वार्षिक रु. १६०, मूल्य रु. १७
ISSN 2582-0656
9 772582 065005
विवेक ज्योति
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)
वर्ष ५८ अंक २
फरवरी २०२०

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

फरवरी २०२०

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी पद्माक्षानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५८
अंक २

वार्षिक १६०/–   **एक प्रति १७/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ८००/–
१० वर्षों के लिए – रु. १६००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ५० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २५० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक रु. २००/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. १०००/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

भगवान श्रीरामकृष्ण की यह आकर्षक-मूर्ति श्रीरामकृष्ण मठ, चेन्नई की है।

फरवरी माह के जयन्ती और त्योहार

०९	**स्वामी अद्भुतानन्द**
२१	**महाशिवरात्रि**
२५	**श्रीरामकृष्ण देव**

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
....	२,०००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है। इससे गत एक शताब्दी से भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है। राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं। श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्भाव को अनुप्राणित कर रही है।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५७ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है। आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें। **— व्यवस्थापक**

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५९१. मुरारी लाल अग्रवाल, सब्जी बाग, पटना (बिहार)	नवजीवन अशोक पुस्तकालय, बरबीघा, शेखपुरा (बिहार)
५९२. " "	पब्लिक लाइब्रेरी मेहुस, मु/पो. मेहुस, जि. शेखपुरा (बिहार).

वर्ष ५८ फरवरी २०२० अंक २

रामकृष्ण शुभं नः

आजन्मब्रह्मचारी शिशुरिव
सततं स्निग्धहास्योज्ज्व श्री-
मूर्तः कारुण्यराशिः कुसुममिव
शुचिः सद्गुरुर्वीतमानः।
आत्मारामो मनोज्ञः परम इति
पुनर्हंससंज्ञः स शिष्यैः
साक्षाच्छ्रीरामकृष्णः प्रदिशतु
भगवान् रामकृष्णः शुभं नः।।

– जो आजन्म ब्रह्मचारी थे, शिशुवत् सर्वदा स्निग्ध हास्य से उज्ज्वल श्री से मंडित थे, करुणा के मूर्त विग्रह-स्वरूप थे, पुष्पवत पवित्र थे, सद्गुरु थे, निरभिमानी थे, आत्माराम थे, चित्त को आनन्द प्रदान करनेवाले थे, सर्वश्रेष्ठ और साधकों में अग्रणी होने के कारण, जो परमहंस की संज्ञा से संज्ञित थे एवं जो साक्षात् श्रीरामकृष्ण रूप में अवतीर्ण हुए थे, इस प्रकार के श्रीरामकृष्ण परमहंस देव अन्तरंग शिष्यों के साथ उपस्थित होकर हमलोगों का मंगल करें।

पुरखों की थाती

यदि सन्ति गुणाः पुंसां विकसन्त्येव ते स्वयम्।
न हि कस्तूरिकामोदः शपथेन विभाव्यते।।६६८।।

– जैसे कस्तूरी के गन्ध का विश्वास दिलाने के लिये शपथ लेने की जरूरत नहीं पड़ती, वैसे ही यदि मनुष्य में गुण विद्यमान हैं, तो उसकी यश-कीर्ति अपने आप ही फैलती है।

आचारः प्रथमो धर्मः इत्येतद् विदुषां वचः।
तस्माद् रक्षेत् सदाचारं प्राणेभ्योऽपि विशेषतः।।६६९।।

– ज्ञानियों के कथनानुसार सदाचार ही प्रथम (प्रमुख) धर्म है, अत: अपने प्राण देकर भी सदाचार की विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिये।

एकसार्थ-प्रयातानां सर्वेषां तत्र गामिनाम्।
यद्येकस्त्वरितं यातस्तत्र का परिदेवना।।६७०।।

– जब किसी स्थान पर (परलोक में) एक साथ सभी लोग जा रहे हों और यदि उनमें से कोई एक जल्दी चला गया (अकाल-मृत्यु को प्राप्त हो गया), तो उसके लिये भला शोक कैसा? (शा.प.)

न कश्चित् कस्यचिन्मित्रं न कश्चित् कस्यचिद् रिपुः।
अर्थतस्तु निबध्यन्ते मित्राणि रिपवस्तथा।।६७१।।

– न कोई किसी का मित्र है और न शत्रु है। लोग परिस्थिति के अनुसार ही मित्रता तथा शत्रुता का सम्बन्ध बना लेते हैं।

सम्पादकीय

परम ब्रह्म का श्रीरामकृष्णावतार

श्रुति प्रतिपाद्य ब्रह्म, जो अखण्ड, एक, अद्वितीय, अभेद, समदर्शी, निर्गुण-निराकार, अरूप और अनिर्वचनीय है, उसी ब्रह्म से यह सारा जगत है और अन्त में यह जगत उसी में लय हो जाता है, किन्तु उसकी अवधारणा सामान्य व्यक्ति को नहीं होती। वेद की सरस सुललित ऋचाएँ जिस अवाङ्-मनसगोचर, अर्थात् शरीर, मन और वाणी से अतीत सत्ता का मुक्त कंठ से गायन करती है, वह अदृश्य, अस्पृश्य तो है ही, सामान्य साधकों हेतु दुर्बोध्य भी है।

किन्तु जब भक्तों की आर्त पुकार से करुणार्द्र होकर वह सर्वव्यापी निराकार ब्रह्म ही साकार-सगुण रूप धारण करता है, तब भक्त उसके रूप का दर्शन, नाम का कीर्तन-भजन, मन से चिन्तन और शरीर से उसकी सेवा कर पाते हैं। भक्त उन्हें अपने जीवन के संकटों को अवगत करा सकते हैं। वे सगुण परमात्मा भक्तों की प्रार्थनाओं को पूर्ण करते हैं, संकटों से रक्षा करते हैं और अपने सच्चिदानन्दमय स्वरूप का बोध कराकर जीवन में सच्ची शान्ति प्रदान करते हैं। ईश्वर के अवतार का यह उद्देश्य होता है।

भगवान श्रीकृष्ण ने अपने सखा अर्जुन को स्पष्ट कहा – ''हे अर्जुन! मैं अजन्मा, अविनाशी होते हुए भी,सभी प्राणियों का ईश्वर होते हुए भी, अपनी प्रकृति को अधीन करके योगमाया से प्रकट होता हूँ। अपने अवतार-प्रयोजन को स्पष्ट करते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं –

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।।[१]

– ''हे भारत! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब मैं स्वयं को प्रकट करता हूँ। मैं सज्जनों के उद्धार, दुर्जनों के विनाश और धर्म को संस्थापित करने के लिए युग-युग में प्रकट होता हूँ।''

ठीक इसी प्रकार भगवान श्रीराम के अवतरण का उल्लेख करते हुए गोस्वामी तुलसीदास जी लिखते हैं –

नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानंद निरुपाधि अनूपा।।
सम्भु बिरंचि बिष्नु भगवाना। उपजहिं जासु अंस तें नाना।
ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीलातनु गहई।।[२]

भगवान के अवतारोद्देश्य की कथा सुनाते हुए शिवजी पार्वतीजी से कहते हैं –

हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थं कहि जाइ न सोई।।
राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी।।
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।।
करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं बिप्र धेनु सुर धरनी।।
तब-तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।।[३]

इस प्रकार हमने ईश्वरावतार और उनके प्रयोजन को देखा। इसी अवतार-शृंखला में युग-प्रयोजनानुसार भगवान श्रीरामकृष्ण देव का आविर्भाव हुआ। भगवान श्रीरामकृष्ण देव ने अपने अन्तिम दिनों में स्वामी विवेकानन्द का संशय दूर करते हुए कहा था – ''जो राम, जो कृष्ण, वही इस शरीर में रामकृष्ण।'' पूर्वोक्त निर्गुण-निराकार अद्वितीय अखण्ड ब्रह्म ही श्रीरामकृष्ण के रूप में घनीभूत होकर अवतरित हुआ। इसे स्वामी विवेकानन्द से भेंट के पूर्व के एक दिव्य दर्शन के सम्बन्ध में अपने सुस्पष्ट अनुभव बताते हुए श्रीरामकृष्ण देव ने कहा था, जिसका वर्णन स्वामी सारदानन्द जी महाराज ने किया है – ''एक दिन देखा – मन समाधि के मार्ग से ज्योतिर्मय पथ में ऊपर उठता जा रहा है। चन्द्र, सूर्य, नक्षत्रयुक्त स्थूल जगत का सहज में ही अतिक्रमण कर वह पहले सूक्ष्म भाव-जगत में प्रविष्ट हुआ। उस राज्य के ऊँचे स्तरों में वह जितना उठने लगा, उतना ही अनेक देवी-देवताओं की मूर्तियाँ पथ के दोनों ओर दिखाई पड़ने लगीं। क्रमश: उस राज्य की अन्तिम सीमा पर वह आ पहुँचा। वहाँ देखा, एक ज्योतिर्मय परदे के द्वारा खण्ड और अखण्ड राज्यों का विभाग किया गया है। उस परदे को लाँघकर वह क्रमश: अखण्ड के राज्य में प्रविष्ट हुआ। वहाँ देखा मूर्तरूपधारी कुछ भी नहीं है, यहाँ तक कि दिव्य देहधारी देवी-देवता भी वहाँ प्रवेश करने का साहस नहीं कर सकने के कारण बहुत दूर नीचे अपना-अपना अधिकार फैलाकर अवस्थित हैं। किन्तु दूसरे ही क्षण दिखाई पड़ा कि दिव्य ज्योतिर्घन तनु सात प्राचीन ऋषि वहाँ समाधिस्थ होकर बैठे हैं। समझ लिया कि ज्ञान और पुण्य में तथा त्याग और प्रेम में ये लोग मनुष्य का कहना ही क्या देवी-देवता तक के परे पहुँच गए हैं। विस्मित होकर इनके महत्त्व के विषय में मैं सोचने लगा। तभी सामने देखता हूँ, अखण्ड, अभेद,

समरस, ज्योतिर्मण्डल का एक अंश घनीभूत होकर एक दिव्य शिशु के रूप में परिणत हो गया। वह देव शिशु उनमें से एक के पास जाकर अपने कोमल हाथों से आलिंगन करके अमृतमयी वाणी से उन्हें समाधि से जगाने के लिए चेष्टा करने लगा। शिशु के कोमल प्रेम-स्पर्श से ऋषि समाधि से जागृत हुए और अधखुले नेत्रों से उस अपूर्व बालक को देखने लगे। उनके मुख पर प्रसन्नोज्ज्वल भाव देखकर ज्ञात हुआ, मानो वह बालक उनका बहुत दिनों का परिचित हृदय-धन है। वह अद्भुत देव-शिशु अति आनन्दित हो उनसे कहने लगा – 'मैं जा रहा हूँ, तुम्हें भी आना होगा।''[४] इसमें वह देव-शिशु स्वयं श्रीरामकृष्ण हैं। श्रीरामकृष्ण के द्वारा वर्णित इस दिव्य दर्शन में हम यह देखते हैं कि कैसे अखण्ड अभेद सत्ता भगवान श्रीरामकृष्ण के रूप में इस धराधाम पर अवतरित हुई। इनका प्रयोजन भी अन्य अवतारों जैसा ही है।

अवतारोद्देश्य और अवतार-तत्त्व के सम्बन्ध में श्री रामकिंकर महाराज कहते हैं – ''श्रीरामकृष्ण परमहंस साक्षात् भगवान के अवतार ही थे और अवतार का दर्शन भी यही होता है। अवतार उस इन्द्रियातीत सत्य को जनसाधारण के लिए सुलभ कर दिया करता है। निर्गुण और निराकार में पहुँच, भला कितनों की हो सकती है? अवतार का तत्त्व ही यह है कि वह निर्गुण को सगुण और निराकार को साकार बना ईश्वर को सबके लिये सुलभ कर देता है। परमहंसदेव का जीवन इसी तत्त्व का निदर्शन है।

इसे एक उदाहरण के द्वारा समझाया जा सकता है। यदि आप सबसे कहा जाय कि आप अपने-अपने मन में एक सुन्दर मूर्ति या व्यक्ति की कल्पना कीजिए, तो आप सभी उसकी कल्पना कर ले सकते हैं और उस सौन्दर्य का अपने मन में आनन्द भी ले सकते हैं। किन्तु यदि आपके सामने एक पत्थर रख दिया और आपको छेनी-हथौड़ी देकर आपसे कहा जाय कि आपके मन में जो मूर्ति है, उसे इस पत्थर में प्रकट कर दीजिए, जिससे कि केवल आप ही उसके सौन्दर्य का आनन्द न लें, बल्कि दूसरे भी ले सकें, तो यह आप में से बहुतों के द्वारा सम्भव न हो पाएगा। हम शिल्पकार के गुणों का गायन इसलिए करते हैं, उसे इसलिए महत्त्व देते हैं कि वह अपने मन में उठी हुई आकृति को छेनी-हथौड़ी के माध्यम से रूप दे देता है। फलस्वरूप, जो मूर्ति, जो सौन्दर्य केवल एक व्यक्ति के मन में था, उसे अब सभी लोग अपनी खुली आँखों से देख सकते हैं। इस प्रकार एक के अन्तर्मन में उभरा हुआ जो सौन्दर्य हैं, वह कोटि-कोटि व्यक्तियों के नेत्रों की तृप्ति का साधन बन जाता है। ठीक इसी प्रकार, ईश्वर को केवल निर्गुण-निराकार मानना अन्तर्मुखता की दृष्टि है, मात्र अपने आनन्द की दृष्टि है, और 'नेति नेति' के रूप में ब्रह्म की उस विलक्षणता की अनुभूति केवल वही कर सकता है, जो अन्तर्मुखता से सम्पन्न है। पर धन्य तो वस्तुत: वह है, जो निर्गुण को सगुण और निराकार को साकार बना सकता है और इस प्रकार इस ब्रह्म को एक के स्थान पर सबके लिए सुलभ बना देता है। अवतारवाद का मूल तत्त्व यही है। यदि अवतार न हो, तो ईश्वर सबके लिये सुलभ नहीं हो सकेगा। उस ब्रह्म के साथ तादात्म्य का अनुभव केवल वे ही कर सकेंगे, जो नाम और रूप से ऊपर उठ सकेंगे, इस दृष्टि से हम कह सकते हैं कि भावना को मूर्ति के रूप में प्रकट करना अथवा निर्गुण को सगुण के रूप में परिणत करना, जीवन के अधूरेपन का नहीं, बल्कि पूर्णता का लक्षण है।''

श्रीरामकृष्णावतार के सम्बन्ध में उनके प्रिय शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने कहा था – ''आर्य जाति का प्रकृत धर्म क्या है और सतत विद्यमान, आपातप्रतीयमान अनेकश: विभक्त सर्वथा प्रतिद्वन्द्वी आचारयुक्त, सम्प्रदायों से घिरे, स्वदेशियों का भ्रान्ति-स्थान एवं विदेशियों का घृणास्पद हिन्दू धर्म नामक युग-युगान्तरव्यापी विखण्डित एवं देश-काल के योग से इधर-उधर बिखरे हुए धर्मखण्डसमष्टि के बीच यथार्थ एकता कहाँ है, यह दिखलाने के लिए तथा कालवश नष्ट इस सनातन धर्म का सार्वलौकिक, सार्वकालिक और सार्वदेशिक स्वरूप अपने जीवन में निहित कर, संसार के सम्मुख सनातन धर्म के सजीव उदाहरणस्वरूप अपने को प्रदर्शित करते हुए लोक-कल्याण के लिए भगवान श्रीरामकृष्ण अवतीर्ण हुए। ...परम कारुणिक श्रीभगवान पूर्व सभी युगों की अपेक्षा अधिक पूर्णता प्रदर्शित करते हुए, सर्वभावसमन्वित एवं सर्वविद्यायुक्त होकर युगावतार के रूप में अवतीर्ण हुए।[५]

भगवान श्रीरामकृष्ण वह अगम्य, निरुपाधि पूर्ण ब्रह्म थे, जहाँ से अवतार-सृजन होता है। उन्होंने लोक-कल्याण हेतु इस धराधाम में कृपा कर अवतार लिया था।

सन्दर्भ सूत्र – १. भगवद्गीता, ४/८,९, **२.** श्रीरामचरितमानस, १/१४३/७, **३.** वही, १/१२०घ/२-८, **४.** युगनायक, खं. १, पृ.९३, **५.** विवेकानन्द साहित्य, खं. १०/१४०/४१) / विवेकवाणी, पृ. ९९

मोक्ष का चतुर्व्यूह

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

मोक्ष का चतुर्व्यूह पातंजल योगसूत्र का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है, जो बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्यों से मिलता-जुलता है।

द्वितीय अध्याय, साधन पाद में क्रियायोग और पंचक्लेशों का वर्णन करने के बाद पतंजलि संक्षेप में कर्म सिद्धान्त का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि पंचक्लेश-अविद्या-अस्मिता-राग-द्वेष और अभिनिवेश के मूल अर्थात् कारण से जीव कर्मों का संचय करता है, जिसे 'कर्माशय' नाम दिया गया है। इन संचित कर्मों के कारण प्राणी को इस जन्म में या अगले जन्म में सुख या दु:ख भोगने पड़ते हैं। पुण्य के कारण सुखदायक जाति, आयु अथवा भोग प्राप्त होते हैं और पापकर्म के कारण दुखदायक योनि में कष्ट भोगना पड़ता है। (२/१२-१४)

इस सामान्य एवं सर्वमान्य सिद्धान्त का उल्लेख करने के बाद पतंजलि एक अत्यन्त गूढ़ सत्य का उद्घाटन करते हैं। सामान्य अविवेकी व्यक्ति भले ही अपने भोगों को सुखदायक अथवा दुखदायक, ऐसे दो प्रकार का समझे और अनुभव करे, विवेकी, योगी के लिये सभी अनुभव चार कारणों से दुखदायक होते हैं – परिणाम, ताप, संस्कार और गुण वृत्ति विरोध (२/१५)। वह सुख के परिणाम का चिन्तन कर, उस सुख को प्राप्त करने से सम्बन्धित ताप का अनुभव कर, उसके संस्कार के निर्माण की सम्भावना को जानकर और तीन गुणों के परस्पर विरोध के कारण स्थायी सुख की असम्भावना को भली प्रकार से समझ कर सुख में दुख देखकर उससे भ्रमित नहीं होता। इस प्रकार योगी के रोम के गोलक जैसे संवेदनशील मन का वर्णन करने के बाद पतंजलि चतुर्व्यूह का वर्णन करते हैं। जिसके चार अंग हैं – १. हेय, २. हेय हेतु, ३. हान, ४. हानोपाय। सामान्य भाषा में कहें तो – १. त्याज्य, २. त्याज्य विषय का कारण, ३. त्याग ४. त्याग का उपाय ।

१. आगामी दुख त्याज्य है। २. उसके कई क्रमगत कारण हैं, पर अविद्या मूल कारण है। ३. उसका नाश होने पर कैवल्य की प्राप्ति होती है, यही हान या त्याग की स्थिति या कैवल्य है। ४. इसका उपाय है निरवछिन्न विवेक ज्ञान अर्थात् आत्मा और बुद्धि को पृथक् जानना। आइए, इनका थोड़ी गहराई से अध्ययन करें।

१. हेयं दु:खमनागतम् (२/१६) – अर्थात् जो दुख अभी नहीं आया है, वह हेय या त्याज्य है, यानि उससे बचा जा सकता है। जो दुख बीत गया है, उसे तो भूल ही जाना चाहिए। वह तो भूत का अंग बन गया है, उससे चिपके रहकर उसका स्मरण कर मन की शक्ति को व्यय करना व्यर्थ है। हाँ, उससे हम शिक्षा अवश्य ले सकते हैं। वर्तमान दुख को सहन करना ही होगा। अत: चिन्ता, विलाप आदि के बिना उसे सहन कर लेना चाहिए। यही तितिक्षा रूपी सद्गुण है। पर जो दुख अभी नहीं आया है, भविष्य में जिसकी सम्भावना है, उससे अवश्य बचने का उपाय करना चाहिए। अगर उसका कारण या हेतु जान लिया जाय, तो उसे दूर कर उससे बचा जा सकता है।

२. द्रष्टा-दृश्ययो: संयोगो हेयहेतु: (२/१७) - द्रष्टा और दृश्य का संयोग इस अनागत दुख का मूल कारण है। यहाँ यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि पतंजलि किसी छोटे-मोटे भावी दुख जैसे रोग, दारिद्र्य आदि से बचने के उपाय की बात नहीं कर रहे हैं। वे तो सभी प्रकार के भावी दुखों की आत्यन्तिक निवृत्ति की बात कर रहे हैं।

संक्षेप में इस सूत्र का अर्थ है द्रष्टा यानि चैतन्य आत्मा अथवा पुरुष का, दृश्य यानी समस्त सूक्ष्म-स्थूल बाह्य अनुभूत-जगत अथवा समस्त त्रिगुणात्मक प्रकृति के साथ मिलन ही दुख का कारण है। पुरुष इस प्रकृति के साथ ऐसा घुल-मिल जाता है कि स्वयं के आनन्दस्वरूप को भूलकर प्रकृति का अनुसरण कर कष्ट भोगता है। इसके बाद दूसरे अध्याय के १८वें से २४ वें सूत्र तक दृश्य का स्वरूप, द्रष्टा का स्वरूप, दोनों के मिलन का उद्देश्य और कारण को समझाया गया है, जिसे हम संक्षेप में देखेंगे।

दृश्य क्या है? दृश्य यानी प्रकृति, प्रकाश अर्थात् सत्त्वगुण, क्रिया अर्थात् रजोगुण और स्थिति अर्थात् तमोगुण युक्त है। वह स्वरूपत: त्रिगुणात्मक है। उसका दूसरा लक्षण है, वह भूत और इन्द्रिय युक्त है। भूत यानी कि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश। ये स्थूल और

सूक्ष्म दो प्रकार के हैं। इन्द्रियाँ दो प्रकार की हैं, ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ। ये दोनों पाँच-पाँच प्रकार की हैं।

यह प्रकृति पुरुष के भोग और अपवर्ग के लिये उससे मिलित होती है। भोग अर्थात् शुभाशुभ कर्मों के फल-सुख-दुख जिसे जीव को अज्ञान की दशा में भोगना पड़ता है। प्रकृति के संयोग से ही यह सम्भव होता है। अपवर्ग अर्थात् मुक्ति या कैवल्य। प्रकृति पहले तो पुरुष को सुख-दुख का भोग कराती है और उसके बाद उसकी मुक्ति में सहायक होती है।

इस प्रकृति के तीन गुणों के भी चार प्रकार के परिणाम या रूप होते हैं। पहली है प्रकृति, स्वयं जो विभिन्न परिणामों का कारण है, पर उसका कोई कारण नहीं है। इसलिए इसे 'अलिंग' कहा गया है। (२/१९) इससे लिंग या महत् तत्त्व उत्पन्न होता है यह आत्मा का 'लिंग' या गमक है। 'मैं हूँ' यह भाव इसी से होता है। इससे 'अविशेष' यानी भूतों के कारण पंचतन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। अनेक कार्यों के सामान्य कारण होने से इन्हें अविशेष कहा गया है और अन्त में विशेष यानी पूर्णरूप से अभिव्यक्त विशेष तन्मात्राओं के सोलह असाधारण कार्य हैं, जो षोड़श-विकारों के नाम से जाने जाते हैं, ये हैं पाँच भूत, दस इन्द्रियाँ और मन। (२/१९)

यह तो हुआ दृश्य का वर्णन। द्रष्टा क्या है? वह विशुद्ध अविकारी द्रष्टा या ज्ञाता मात्र है। वह शुद्ध होते हुए भी प्रत्यय यानी बुद्धि में उठ रहे भावों या विचारों के साथ अपना तादात्म्य स्थापित कर उनका अनुभव करता है। (२/२०) दृश्य की आत्मा या स्वरूप वस्तुत: द्रष्टा के लिए ही है। उसका स्वयं का अपना कोई उद्देश्य नहीं है।

द्रष्टा का भोगापवर्ग सिद्ध करके दृश्य या प्रकृति स्वयं नष्ट हो जाती है। (२/२१) यही बात २/२२ में कही गयी है कि जिस पुरुष या द्रष्टा का भोगापवर्ग कार्य पूर्ण हो जाता है, उसके लिये फिर उसे बाँधनेवाली माया या प्रकृति या दृश्य नहीं रहता। पर अन्य साधारण द्रष्टाओं यानी प्राणियों या जीवों के लिए वह बनी रहती है।

इन दो का मिलन या संयोग क्यों होता है, इसका उद्देश्य है – दोनों की अपनी शक्ति की उपलब्धि (२/२३)। इसे समझने के लिए रेल के इंजिन और उसके ड्राईवर का दृष्टान्त लिया जा सकता है। इंजिन की शक्ति १००० हार्स पावर है। पर फिर भी वह जड़ और निष्क्रिय है। ड्राईवर में तो सम्भवत: १५ किलो वजन उठाने की भी शक्ति नहीं है। वह चेतन है, पर वह नहीं जानता कि वह इतने बड़े इंजिन को चला सकता है। जब वह इंजिन में बैठकर बटन दबाता है, तो इंजिन चलने लगता है और ड्राईवर उसमें बैठा उसका मजा लेता है। वह अपनी क्षमता तथा चैतन्य स्वरूप को पहचान जाता है और इंजिन को भी अपनी क्षमता तथा ड्राईवर के बिना पूर्ण असमर्थता का बोध हो जाता है। इसी प्रकार प्रकृति और पुरुष, दृश्य और द्रष्टा का मिलन दोनों की शक्ति की उपलब्धि के लिये आवश्यक है और इस संयोग या मिलन का हेतु या कारण है अविद्या। अनित्य को नित्य, अशुचि को शुचि, अनात्मा को आत्मा समझना, अविद्या के लक्षण हैं। इसी ने सभी जीवों को भ्रमित कर रखा है और यही दुख का मूल कारण है। (२/२४) उसके दूर होने पर, द्रष्टा और दृश्य का मिलन या संयोग नहीं होता। यही हेय का हान यानी त्याज्य पदार्थ का त्याग है और यही कैवल्य या मोक्ष है। (२/२५)

इस हान यानी अविद्या के नाश का उपाय क्या है? निरन्तर, निरवच्छिन्न ''विवेक-ख्याति''। (२/२६)। हम विवेक का अर्थ समझते हैं विचार के द्वारा दो पदार्थों को अलग करना। अध्यात्म की भाषा में विवेक का अर्थ है विचार द्वारा आत्मा को अनात्मा से, अनित्य से नित्य को अलग करना। योगशास्त्र में इसका थोड़ा-सा भिन्न पारिभाषिक अर्थ है। **सत्त्वपुरुष-अन्यथा-ख्याति विवेक ख्याति** – अर्थात् सत्त्व यानी बुद्धि और पुरुष यानी चैतन्य आत्मा को भिन्न जानना। ख्याति शब्द का अर्थ है ज्ञान। जिस विवेक के द्वारा बुद्धि, जो मूलत: अचेतन है, उसे पुरुष से पृथक् किया जाता है, वह विवेक ख्याति है। यह ज्ञान अविप्लवा यानी निरन्तर, निरवच्छिन्न बना रहना चाहिए। यह है मोक्षव्यूह का चतुर्थ अंग।

पर इतने से ही विषय समाप्त नहीं हो जाता। इस हान-उपाय का ही विस्तार है–अष्टांग योग। अष्टांगयोग के आठ अंगों का विधिपूर्वक अनुष्ठान करने से अशुद्धि अर्थात् अविद्या, अहंकार, राग-द्वेषादि दूर होते हैं। इस अज्ञानमूलक अशुद्धि के दूर होने पर ज्ञान का प्रकाश उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। योगांग-अनुष्ठान का अर्थ है अविद्यावश कार्य न करना। जैसे अहिंसा की साधना से द्वेष रूप अज्ञान का कार्य रुक जाता है। सत्य के द्वारा लोभादि कई अज्ञान के कार्य

शेष भाग पृष्ठ ६८ पर

स्वामी विवेकानन्द का वैश्विक मन

प्रव्राजिका विरजाप्राणा

(गतांक से आगे)

स्वामी विवेकानन्द तो बहुत कम सो पाते थे। उनके जीवन की एक बड़ी मार्मिक घटना है। एक दिन रात्रि के तीसरे प्रहर में वे बरामदे में टहल रहे थे। स्वामी विज्ञानानन्द जी ने उठकर देखा और विस्मित होकर पूछा, ''स्वामीजी क्या हुआ? क्या आपको नींद नहीं आ रही है?'' स्वामीजी ने उत्तर दिया, ''पेशन मैं सो रहा था। अचानक मेरे हृदय में भयानक वेदना होने लगी। इसलिए मैं उठ गया। मुझे ऐसा लग रहा है कि कहीं बहुत भयंकर दुर्घटना हुई है और हजारों लोगों की मृत्यु हुई है!'' स्वामी विज्ञानानन्दजी ने सोचा कि कहीं कोई विध्वंसक घटना घटी और उससे बेलूड़ मठ में सो रहे स्वामीजी जग गये। यह कैसे सम्भव है? फिर उन्होंने कहा, ''क्या आश्चर्य! दूसरे दिन जब हमने अखबार खोला, तो उसमें हमने पढ़ा कि फिजी द्वीप पर भयानक भूकम्प के कारण ज्वालामुखी का उद्रेक हुआ और उसमें हजारों लोगों की मृत्यु हुई। हजारों बेघर हो गये। जैसे ही मैंने पढ़ा, मैं अवाक् हो गया।'' भूकम्प–अभिलेख (सेसीमीग्राफ) से भी अधिक स्वामीजी का हृदय मानवों के दुखों के प्रति संवेदनशील और प्रतिक्रियाशील था।

उनके गुरुभाई भी स्वामीजी की सभी मनुष्यों के प्रति संवेदनशीलता देखकर चकित हो गये। दैव-मानव स्वामीजी का हृदय प्रत्येक जीव के साथ एकाकार था, दूर से भी दूसरों की भावनाओं को महसूस कर सकता था, मानसदर्शन करता था। एक बार रामकृष्ण संघ के वरिष्ठ संन्यासी ने बातों–बातों में स्वामीजी के विषय में कहा, ''एक मातृहृदय है, जो सारे विश्व को, सारे मनुष्यों को देखता है। जब आप हृदय उद्घाटित करते हैं, तो आप उस मातृहृदय में सम्मिलित होते हैं। तब विश्व के किसी भी प्रदेश के दुखों के क्रंदन आपके हृदय में अनुभव होंगे। यह अनुभव आपको जगाएँगे और उद्धार के लिए आप दौड़ पड़ेंगे। इस मनुष्य (स्वामीजी) के उदार हृदय की कल्पना कीजिए। वे पद-दलितों के दुखों के विषय में बोलते हुए अपने अश्रुओं को रोक नहीं सकते थे, ... वे खा नहीं सकते थे, सो नहीं सकते थे। जब मैं इसके बारे में सोचता हूँ तो मेरी कल्पनाशक्ति लड़खड़ा जाती है। मैं यह कल्पना नहीं कर सकता कि ऐसा भी कोई मनुष्य हो सकता है और ऐसी भी भावनायें हो सकती हैं।''

उच्च उदात्त संकल्पनाओं की संसद में स्वामीजी को श्रद्धांजलि देने का और एक अन्य कारण है – पाश्चात्य जगत में पहली बार विश्व के विभिन्न धर्मों में समन्वय, सद्भाव और सामंजस्य को प्रवर्तित करना! १८९० के पूर्वार्ध में अमेरिका में कौन-से विचार प्रवाह चल रहे थे, इसका यह स्पष्ट निर्देशक है। प्रतिपक्ष में कुछ लोगों का मत है कि विश्वधर्म-सम्मेलन का उद्देश्य स्वतन्त्रता के ध्वज तले ईसाई धर्म का प्रसार करना, उसकी उत्कृष्टता को प्रस्थापित करना था। विश्वधर्म-सम्मेलन का जो कुछ भी उद्देश्य रहा हो, उसने स्वामीजी को तथा भारत को अमेरिका और पूरे विश्व से परिचित कराने का ईश्वरीय कार्य किया। अमेरिकावासी, सजगतापूर्वक नहीं, किन्तु स्वामीजी जैसे महान आत्मा की प्रतीक्षा कर रहे थे। स्वामीजी प्राचीन ऋषियों की तरह, अग्नि के समान देदीप्यमान थे। वे अकेले ही भौतिकता के नीचे दबी हुई आध्यात्मिकता की अग्नि को प्रज्वलित कर सकते थे।

स्वामीजी की महानता के बावजूद यह कार्य उनके लिए आसान नहीं था। उन्हें अमेरिका और भारत में स्पर्धात्मकता और द्वेष से उत्पन्न विरोधों का संघर्ष करना पड़ा। उन्हें चुगलखोर, मतान्ध ईसाइयों, धर्मान्ध सामाजिक दल, अज्ञेयवादी, तथाकथित स्वतंत्र विचारवादी, जो धर्मसम्बन्धी किसी भी दूरस्थ बातों का विरोध करते थे, आदि लोगों से युद्ध करना पड़ा। इससे भी अधिक मूल बात थी कि स्वामीजी को भारत से पूर्णत: विरुद्ध संस्कृति की मानसिकता का सामना करना पड़ा। दोनों संस्कृतियों की भिन्नता मानव जीवन के अंतिम लक्ष्य पर केन्द्रित थी। रीति, परम्परा, प्रथा, धार्मिक आस्था, कला, साहित्य, विज्ञान प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इसी एक केन्द्रबिन्दु से उद्भुत हुए थे। इसी बिन्दु पर पूर्व और पश्चिम में भिन्नता थी। सहस्त्रों वर्षों पूर्व जीवन की पहेली सुलझाने के लिए पूर्व के राष्ट्रों ने 'अन्तर्मन में' देखा। जबकि पाश्चात्य जगत् ने, कह सकते हैं आज भी, 'बाहर' देखा। किन्तु स्वामीजी की कुशाग्र और व्यापक बुद्धि दोनों संस्कृतियों के गुण और दोषों की निष्पक्ष दृष्टि से तुलना करने में समर्थ थी। उन्होंने दोनों संस्कृतियों की विशेषताओं को अबाधित रख कर दोनों संस्कृतियों के मिलन बिन्दु के

समन्वय की एक आदर्श कल्पना की थी।

अमेरिकी समाज में आध्यात्मिकता के बीज बोने के लिए और इन विरोधी शक्तियों का प्रतिरोध करने के लिए अतिमानवीय दैवी शक्ति तथा इच्छाशक्ति की आवश्यकता थी। स्वामीजी का विशाल हृदय उन्हें अमेरिका खींच ले गया था। यह हृदय अपने देश के लिए भौतिक सहायता पाना चाहता था। अमेरिकी समाज भौतिक साधनों से सम्पन्न था। इस समाज में नए विचारों को ग्रहण करने की बहुत क्षमता थी। अमेरिकी तथा अन्य पाश्चात्य देशों की आध्यात्मिक आवश्यकताओं के कारण स्वामीजी वहाँ रह गये।

स्वामीजी अमेरिका की समता, स्वतन्त्रता, वैयक्तिक उत्साह, सह-कार्यशीलता, सामान्य नर–नारियों की प्रतिष्ठा आदि के प्रशंसक और समालोचक थे। अपने भारतीय मित्रों को लिखे पत्र में उन्होंने बालसुलभ उत्सुकता से इन सबके विषय में लिखा था। अमेरिका निवास के प्राथमिक दिनों में हेल परिवार और अन्य लोगों के साथ उनका आत्मीय सम्बन्ध, समाज के प्रति उनकी गहरी अन्तर्दृष्टि विकसित हुई। किन्तु इस नये अनुभवों का दुखदायी पक्ष था – पाश्चात्य देशों की स्वतन्त्रता और वहाँ के लोगों की तेजस्विता तथा अपनी मातृभूमि की परतन्त्रता और स्वदेशवासियों की शोचनीय जीवन दशा एक दूसरे के अत्यन्त विरोधी थे। स्वामीजी का हृदय अपने देशवासियों के दुखों से और अधिक विदीर्ण होता था। भारतीय शिष्यों को उन्होंने उत्तेजनापूर्ण पत्र लिखे। उदाहरणार्थ – ''बीस करोड़ नर–नारी जो सदा गरीबी और मूर्खता में फँसे हैं, उनके लिए किसका हृदय रोता है? उनके उद्धार का क्या उपाय है? कौन उनके दुख में दुखी है? ... ये ही तुम्हारे देवता बनें, ये ही इष्ट बनें। निरन्तर इनके लिए सोचो, इनके लिए काम करो, इनके लिए निरन्तर प्रार्थना करो, प्रभु तुम्हें मार्ग दिखायेंगे। ...जब तक करोड़ों भूखे और अशिक्षित रहेंगे, तब तक मैं प्रत्येक उस व्यक्ति को विश्वासघातक समझूँगा, जो उनके खर्च पर शिक्षित हुआ है, परन्तु आज उन पर तनिक भी ध्यान नहीं देता!''

स्वामीजी का संवेदनशील मन जीवन भर लोगों की भौतिक और आध्यात्मिक आवश्यकताओं के लिए निरन्तर स्पन्दित होता था। परवर्तीकाल में भगिनी निवेदिता को वे लिखते हैं – ''मैं जिनके बीच में पैदा हुआ हूँ, उनके लिए मैं अपना हृदय भग्न न करूँ, तो अवश्य ही दूसरों के लिए करूँगा। मुझे इसका पूरा विश्वास है।'' उनकी परम करुणा ने उन्हें अशान्त कर दिया। उनके कोमल हृदय ने सर्वस्व दे दिया। उन्होंने अमेरिका में अनेक व्याख्यान दिये। अनेक आध्यात्मिक कक्षाएँ लीं। अक्लान्त कार्य करते रहे। अनौपचारिक पद्धति से लोगों से मिले। केवल अस्तित्व मात्र से लोगों का उत्थान किया। उन्हें आशीर्वाद दिये। इसके साथ वे 'भारत में अपना कार्य सुव्यवस्थित' कर रहे थे। उन्होंने पत्र-व्यवहार से अपने शिष्यों को तथा आध्यात्मिकता को सामर्थ्यशाली बनाने के लिए अपनी योजना बतायी। योजना को व्यावहारिक स्तर पर कार्यान्वित करने के निर्देश दिये।

स्वामीजी का हृदय 'पुष्प की तरह कोमल' होते हुए भी कभी भी भावुक नहीं था। दूसरों के हित के लिए आवश्यकतानुसार वे रुद्रावतार धारण कर लेते थे। वे अपने शिष्यों को नर-नारायण की पूजा के कार्य में कूद पड़ने के लिये व्याकुलता से कहते थे। उसके लिए वे कठोर शब्द-प्रहार करते थे। कुछ वर्षों पश्चात् उन्होंने श्रीमती बुल को शिकायत करते हुए कहा, ''मुझसे बड़ी गलतियाँ भी हुईं, किन्तु प्रत्येक गलती, सबके प्रति मेरे अत्यन्त प्रेम के कारण थी। मैं प्रेम से कैसे द्वेष करूँ? काश मैं अद्वैती, शान्त, हृदयहीन और मात्र संदेशक होता!'' कभी-कभी वे जबरदस्त विपरीत परिस्थितियों और स्वयं के नैसर्गिक भावनात्मक प्रतिक्रियाओं के कारण निराश हो जाते थे। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि स्वामीजी कभी-कभी असन्तुष्ट, चिड़चिड़े हो जाते थे। उन्होंने जैसे पहले बताया, ''देखो, कुछ भी नहीं! मैं कितने कमजोर हृदय का हूँ। प्रेम के कारण पराजित हो गया हूँ! मैं तुम्हें अपनी मानसिक अवस्था क्या बताऊँ? ओह! जैसे मेरे हृदय में रात–दिन नरकाग्नि जल रही है।''

स्वामीजी ने अपना मन कितना भी कठोर करने का प्रयास किया हो, किन्तु दूसरों के प्रति आन्तरिकता को रोक नहीं सके। उनकी अन्तरात्मा हमेशा ही प्रकाशमान, उज्ज्वल और स्वतन्त्र रही। जिसे हम सामान्यत: मानवीय भावना कहते हैं, उससे वह तनिक भी आच्छादित नहीं हुई।

संघर्ष, हताशा, सामयिक असफलता, प्रारम्भ में भारतीय मित्रों की मदद न मिलना, कुछ शिष्यों का उन्हें त्यागना, आदि विरोधों से उन्हें गुजरना पड़ा। किन्तु इन विरोधों के कारण उनके अन्दर की अनन्त शक्ति जागृत हुई। स्वामीजी की दृष्टि विशाल हुई और वे सच्चे अर्थ में विश्वमानव बने। मनुष्यजाति की ओर से वे सारे द्वन्द्वों से लड़ रहे थे। मनुष्य सीमितता में कैसा रह सकता है, इसका मानो अभिनय कर

रहे थे। मनुष्य के बन्धनों को देखकर, उससे उत्पन्न उनकी सर्वसमावेशी वैश्विक सहानुभूति, उनके एकात्म अनुभूति से उद्भूत थी। स्वामीजी अनन्त आत्मा से एकरूप थे। वे सभी मनुष्य–प्राणियों से भी एकात्म थे। यह एकरूपता स्वामीजी के दिव्यत्व और दूसरों में अलौकिकता के प्रत्यक्ष ज्ञान से उत्पन्न थी। अनन्त समुद्र की ओर बहनेवाली उनकी शक्ति प्रत्येक को अपने साथ ले जाने के लिए व्याकुल थी। स्वामीजी विश्व के आचार्य, विश्वगुरु बन गये थे। १८९७ में भारत लौटने के पूर्व वे मित्रों के अत्यन्त आग्रह से इंग्लैण्ड गये। अमेरिका की तरह यहाँ भी उन्होंने अपना वैश्विक संदेश दिया। उसे हार्दिक प्रसन्नता और उत्साह से स्वीकृत किया गया। कुछ सच्चे निष्कपट स्त्री-पुरुषों के साथ अमेरिका की तरह यहाँ भी उन्होंने अपना कार्य किया। भारत लौटने तक, 'उनका हृदय अकल्पनीय विशाल हो गया था। सच्चे वैश्विकता की दीप्ति उनके व्यक्तित्व से प्रकाशित हो रही थी। चार वर्ष पूर्व भ्रमण करनेवाले परिव्राजक संन्यासी भारत के आचार्य थे। पाश्चात्य से वापस लौटनेवाले स्वामी विवेकानन्द अब विश्व के आचार्य थे।'

स्वामीजी अपनी आध्यात्मिक अनुभूतियों के कारण प्राणिमात्र में उसी अनन्त का अस्तित्व देखते थे। फिर भी व्यावहारिक स्तर पर उस सत्य की विभिन्न अभिव्यक्तियों का अनुभव करते थे। उन्होंने कभी भी एकत्व की अनुभूति अथवा अस्तित्व की एकता को अभिव्यक्ति की समानता से नहीं जोड़ा। उन्होंने शुद्ध चैतन्य को विभिन्न आकारों में खेलते हुए, आँखों से झाँकते हुए, मुखों से बोलते हुए तथा सारे हृदयों में प्रेम करते हुए देखा। उपनिषदों के अनुसार सत्य – सर्वं खल्विदं ब्रह्म (यह सब ब्रह्म ही) है। उन्होंने उद्घोषित किया कि संसार की सारी भिन्नताएँ उपाधियों की हैं, प्रकार या वर्गों की नहीं। क्योंकि एकत्व ही सब का रहस्य है। उन्होंने स्पष्ट करते हुए कहा, "तत्त्व एक ही है। किन्तु अज्ञानी लोग उसे जगत कहते हैं।" अपने एकत्व की अनुभूति के आधार पर ही उन्होंने मनुष्यरूप में ईश्वर की वैश्विक पूजा–'सेवा' की संकल्पना सामने रखी। वे कहते हैं – "मेरी अभिलाषा है कि मैं बार–बार जन्म लूँ और हजारों दुख भोगता रहूँ, ताकि मैं एकमात्र ईश्वर की पूजा कर सकूँ, जिसकी सचमुच सत्ता है और जिसका मुझे विश्वास है – अर्थात् सम्पूर्ण आत्माओं की समष्टिरूपी ईश्वर की। सबसे बढ़कर, सभी जातियों और वर्णों के पापी, तापी और दरिद्र रूपी ईश्वर ही मेरा विशेष उपास्य है।"

१८९४ में अपने संन्यासी भाइयों को लिखे पत्र में स्वामीजी ने कहा, "जीवन्त ईश्वर की पूजा करो। मनुष्य-देवता की पूजा करो। ईश्वर ने मनुष्यरूप धारण किया है। ईश्वर की पूजा, जो अपने विराट तथा वैयक्तिक (शान्त) रूप में अभिव्यक्त है।" फिर उन्होंने लिखा – 'अगर तुम दूसरों के प्रति संवेदनशील हो, तो तुम एकत्व की ओर बढ़ रहे हो। सहानुभूति ही बल है, जीवन है, जीवनशक्ति है। इसके बिना कोई भी बौद्धिक कृति भगवान तक पहुँच नहीं सकती। ... भगवान को बौद्धिकता से नहीं, हृदय से देखा जा सकता है।"

महासमाधि के कुछ दिन पूर्व बेलूड़ मठ की बात है। स्वामीजी अपने कमरे से निकलकर सीढ़ियाँ उतरकर, नीचे मैदान में आये। और अन्तर्मुखी अवस्था में वहाँ सम्मिलित साधुओं से कहा – "यह देख प्रत्यक्ष ब्रह्म! इसकी उपेक्षा करके जो लोग दूसरे विषय में मन लगाते हैं, उन्हें धिक्कार! हाथ पर रखे हुए आँवले की तरह यह देख ब्रह्म! देख नहीं रहा है? – यही, यही!"

मुझे ऐसा विश्वास है कि यही स्वामीजी के वैश्विक हृदय की कुंजी है।

स्वामीजी के करुणामय हृदय का दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ा? स्वामीजी ने जनसाधारण के चैतन्य कोष में अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति प्रदान की। उन्होंने मनुष्य के गहन-गंभीर विचार और अन्तरात्मा को प्रेरित किया। उन्होंने नये और पुराने धार्मिक मान्यताओं का पुनरुत्थान किया। उन्होंने उत्थान को परिवर्तन की शक्ति प्रदान की। वे द्रष्टा होते हुए भी अत्यन्त यथार्थवादी व्यक्ति थे। उन्होंने सर्वव्यापी और सर्वान्तर्यामी दिव्यत्व, परमात्मा का अनुभव करते हुए जगत को अपने क्रिया-कलापों द्वारा अन्तर्बाह्य देवतुल्य बनाया। जो भी उनके सान्निध्य में आये, उनके साथ वार्तालाप करते हुए, उन्होंने उनके चैतन्य का उत्थान किया, उनके जीवन में परिवर्तन लाया। निश्चित ही स्वामीजी में तथाकथित ऐहिकता और आध्यात्मिकता में विभाजन नहीं था। उनके लिए सब कुछ आध्यात्मिक था। उनकी प्रतिभा इतनी समावेशी थी और उनका हृदय इतना उदार था कि उसमें कुछ भी अस्वीकार्य अथवा त्याज्य नहीं था। उन्होंने सब कुछ और प्रत्येक को सम्मिलित किया था। उनकी उपस्थिति में लोगों के हृदय उद्घाटित हो जाते थे। भगिनी निवेदिता ने आश्चर्यचकित

होकर देखा कि स्वामीजी अनायास ही व्यक्ति के शक्तिकेन्द्रों को, अच्छे गुणों को पहचान लेते थे। चुम्बक की तरह उनकी महानता लोगों को आकर्षित करती थी और लोगों की अव्यक्त महानता को व्यक्त करती थी। मिस जोसफेन मैक्लाउड ने अपनी स्मृतियों में लिखा है, ऐसा लगता है कि स्वामीजी लोगों का बल, दिव्यत्व और शक्ति को देखते थे। दूसरों के मन में धैर्य का प्रवेश कराते थे। जो भी उनके पास आये, वे उत्साही, अनुप्राणित और समर्थ होकर गये। स्वामीजी का सपना था कि मानव-जाति अपने आन्तरिक गौरव और बल को पहचान कर नींद से जाग जाए, प्रत्येक में व्याप्त अनन्त के अस्तित्व के एकत्व का अनुभव करें। श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द; इन दो आत्माओं के आगमन से सात्त्विक आध्यात्मिक शक्ति की लहर उत्पन्न हुई। वह लहर शिखर तक पहुँची और उसने मानवता का परिग्रहण किया। हम उस असीम अनन्त आध्यात्मिक शक्ति के बहुत समीप हैं। स्वामीजी ने अनुमान किया था कि यह आध्यात्मिक शक्ति सात–आठ शतकों तक विश्वकल्याण के लिए कार्य करेगी।

हमारी सीमित दृष्टि में इस अद्भुत आध्यात्मिक शक्ति के प्रवाह का प्रभाव कभी बन्द नहीं होगा। उसके पूरे परिणाम का अनुभव करना अभी शेष है। जैसे स्वामी शिवानन्द 'महापुरुष महाराज' ने कहा था, ''यह तो अभी मंगलाचरण है।'' किन्तु सारे विश्व में यह शक्ति सूक्ष्म स्तर पर ग्रहणशील हृदयों को छेदकर संचालित हो रही है। क्या इस लहर को रोकना सम्भव है? मुझे लगता है – नहीं! स्वामीजी का हृदयकमल सम्पूर्ण: प्रस्फुटित था। भगवती ने डाले हुए आवरण को चीर दिया था। स्वामीजी ने कहा था कि जब तक सारे मानव ईश्वर के साथ एकात्मता का अनुभव नहीं कर लेते, तब तक वे मानवता के लिए कार्य करते रहेंगे। क्या इससे अधिक विशाल हृदय सम्भव है? **(समाप्त)** ❍❍❍

कविता

मुक्ति प्राप्त होगी सबको

सुखदराम पाण्डेय, लखनऊ

बीत गया दिन और एक पर दर्शन प्रभु का मिला नहीं ।
अश्रु बहाया तृषित नयन से हृदयकमल पर खिला नहीं ।।
लगा कि जीवन गया व्यर्थ अब तब श्रीरामकृष्ण बोले -
देहरी पर सिर कलम करूँगा माँ ने जो न द्वार खोले ।।

लिया खड्ग अपने हाथों में ज्यों ही किया प्रहार प्रबल ।
गर्दन पर आने से पहले माँ ने थामे हाथ सबल ।।
प्रगट हुयीं जगदम्बा सम्मुख ज्योतिर्मय हो उठा गगन ।
बिन्दु समाया आज सिंधु में ममता में शिशु हुआ मगन ।।

लुप्त-बोध हो शिशु अबोध वह बेसुध होकर पड़ा रहा ।
बीते दिवस तीन तब तक वह आत्मबोध में गड़ा रहा ।।
व्युत्थित हो समाधि-सुख से वह जब बाहर आया गम्भीर।
सुषमा-शांति सुलभ जीवन का बहा अमर अध्याय समीर ।।

हुयी दिशाओं पर वर्षा शत-शत आशीषों की एक साथ ।
मोदमयी हो प्रकृति सहस्त्रों शीशों पर झुक आये हाथ।।
मात्र उपस्थिति महादेव की परिवर्तन का हेतु बनी ।
तपती जगती पर घिर आई शीतल घन की घटा घनी ।।

महाकाल की व्याकुलता का फल जन का वरदान बना ।
आलोकित हो उठा जगत अँधियारा युग का हुआ फना ।।
चहके पक्षी डाल-डाल पर विकसित पुष्प बसंत आया ।
बीती द्वन्द्व-दुराशा मन की प्रभु प्रकटे जीवन आया ।।

जन्मोत्सव के बाद जन्म यह ईश्वर का द्विज रूप अमल ।
आन, मान, मर्यादा पूर्वक जीना सबका हुआ सफल ।।
सबके हित के लिये तपे वे जागृत कर जग-कुंडलिनी ।
सारदा माँ को सौंप गये थे दीन, दरिद्र, विपन्न धनी ।।

शिक्षा का गुरु भार सौंपकर वीर नरेन्द्र के कंधों पर ।
ब्रह्मज्ञों की परम्परा इतिहास बनी, अनुबन्धों पर ।।
स्थित धर्म को बाहर लाकर सत्य प्रतिष्ठ किया इसको ।
ईश्वर पर अधिकार सभी का मुक्ति प्राप्त होगी सबको ।।
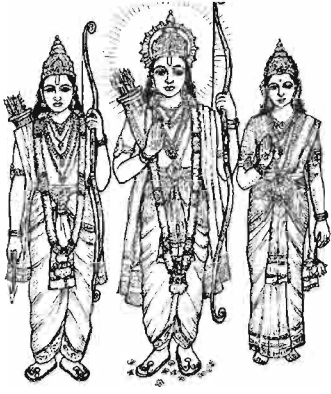
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (८/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलेखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है। – सं.)
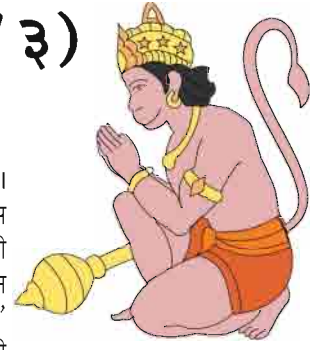
फिर वह संकेत आता है कि भगवान श्रीकृष्ण को मैया ने सुला दिया। उनके ऊपर शकट थी। शकट के ऊपर दूध-दही के घड़े थे। कहते हैं कि उस शकट पर शकटासुर आ गया और भगवान कृष्ण ने खेलते-खेलते एक लात लगा दिया तो शकटासुर मर गया। छकड़ा उलट गया। सारा दूध-दही बह गया। कितनी बढ़िया बात है। जिह्वा जप करेगी, पता नहीं कब उसे शकट के नीचे डाल देगी, शकट ऊपर और उस पर दूध-दही के घड़े। नाम नीचे और ये वस्तुएँ ऊपर। जरा सोचिए, जप हो रहा हो और देह का ध्यान आ जाय, बढ़िया षड्रस आ जाय, तो जप ही तो छूटेगा। वह रस ही जिह्वा के ऊपर सवार हो जाएगा। हे प्रभो, अब तो आप ही कृपा करो। व्यक्ति तो आपके ऊपर भी संसार के रसों को स्थापित कर देता है। अब आप ही जैसे अपने लीला में प्रहार किया वैसा ही कुछ प्रहार कीजिए कि छकड़ा ही उलट जाय।

मानो भक्त यह बताना चाहता है, प्रभु हम तो जीवन में साधना करने में भी सक्षम नहीं हैं। हम बार-बार भूल दोहराते हैं, किन्तु समझ नहीं पाते हैं। भगवान कृष्ण के चरित्र में एक प्रसंग है। पूतना बड़ी सुन्दरी स्त्री के वेष में आ गई। देखकर सब प्रभावित हो गये और तब यशोदाजी से उसने कृष्ण को माँगा। उन्होंने पूतना की गोद में कृष्ण को दे दिया। याद रखिए जप के समय आकर जो बाधा पहुँचाते हैं, वे पूतना ही होते हैं। जो आते तो अच्छा बनकर हैं, पर उसे भगवान ही जानते हैं कि वह व्यक्ति कैसा है। अभिप्राय है कि महाराज, उसको कौन पहचान पाये, कैसे पहचान पाये? रस का भी आकर्षण है, जीवन में न पहचानने की वृत्ति है। आप ही कृपा करके हमारे जीवन में ऐसी स्थिति ला दें, जिससे हम पहचान सकें कि यह पूतना है, हम पहचान सकें कि यह शकटासुर है। इस तरह से भगवान की जो दिव्य लीला है, मानो उसमें संकेत यह है कि अगर आपको प्रारम्भ वाली लीला भी करनी है, तो आप गोकुल और मथुरा वाली लीला कीजिएगा, अयोध्या वाली लीला यहाँ न करें। मेरा अन्त:करण अयोध्या जैसा पवित्र नहीं है। मेरा अन्त:करण जो है वह तो मथुरा जैसा है, जहाँ पर बंदी हैं वसुदेव, बंदिनी हैं देवकी, जहाँ पर सब प्रकार से परतन्त्रता है। हम कैसे कहें कि हमारा अन्त:करण अयोध्या है और हमारे इस अयोध्या में आप अवतार लीजिए। मानो भक्त की यह अनुभूति व शरणागति का मूल तत्त्व यही है।

जब तक यह अनुभव हो रहा हो कि हम साधना के द्वारा ही सब कुछ पा लेंगे, तो साधना के द्वारा पाया तो बहुत कुछ जा सकता है, लेकिन सब कुछ खोया भी जा सकता है। आप धन एकत्र करते हैं, तो क्या चोर उसे चुरा नहीं ले जाता? डाका डालकर क्या उसे कोई छीन नहीं लेता? ठीक इसी प्रकार से साधन के द्वारा अगर किसी व्यक्ति ने बहुत कुछ एकत्र भी किया, तो चोर-डाकुओं की भी संख्या इतनी बड़ी है, कि वे तो लूट लेंगे। पर जिस व्यक्ति ने शरणागति ग्रहण कर लिया, अब भगवान पर ही यह भार है कि भगवान निरन्तर उसकी रक्षा करें।

जो व्यक्ति यह मान ले कि हम अपने बल से साधन कर सकते हैं और जो प्राप्तव्य है, उसे पा सकते हैं, वह उसे पा भी सकता है और खो भी सकता है। पर जिसने निरभिमानता की पराकाष्ठा का अनुभव कर लिया, वह बच सकता है। आप यह न समझ लीजिएगा, ये जो भक्त हैं, ये शाब्दिक नम्रता की बात कहते हैं, कल श्रद्धेय स्वामीजी महाराज ने स्मरण दिलाया था कि भई, हम जिसको साधन कहते हैं, वह हमारी आपकी दृष्टि से बड़े महत्त्व का हो सकता है। यदि आप यह कहें कि आप नौ दिन, पंद्रह दिन, तीस दिन का व्रत रखते हैं, केवल जल लेकर उपवास

करते हैं, तो आप को यह संख्या बहुत बड़ी लग सकती है, लेकिन भगवान के यहाँ, अगर भगवान अपने मापदण्ड पर काल की गणना करें, तो सचमुच उसका कोई महत्त्व है क्या? जैसे कोई बच्चा आपको व्रत करते हुए देखकर कहे कि मैं भी करूँगा और एक मिनट बाद कहे कि मैं व्रत का पारण करूँगा। तो आपको हँसी आएगी या नहीं? अच्छा तुम्हारा एक मिनट वाला व्रत है। पर हँसने की क्या बात है? आपके चौबीस घंटे के सामने उसका एक मिनट का व्रत आप को हँसी की बात लगती है। पर उस महाकाल भगवान की घड़ी में आपके हजारों वर्ष का जो जप-तप है, वह उसकी घड़ी के एक मिनट के बराबर भी है क्या? कुछ नहीं है। सत्ता ही कुछ नहीं है। क्या आपने व्रत किया, क्या आपने तपस्या किया। मान लीजिए की मनु ने बावन हजार वर्ष तपस्या की, तो हमें, आपको संख्या बड़ी लगती होगी, पर ब्रह्मा के मापदण्ड के अनुसार सोचिए। चारों युग जब एक हजार बार व्यतीत हो जाये तब ब्रह्मा का एक दिन होता है और इस तरह से ब्रह्मा की आयु सौ वर्ष है, तब आप सोचिए कि ब्रह्मा की एक दिन की आयु में भी ये बावन हजार वर्ष किस हिस्से में आवेगा? कुछ नहीं है। इतनी तपस्या कर डाला। क्या कर डाला? वह ईश्वर जब असीम दृष्टि से देखेगा, तो कुछ नहीं है, वहाँ तो व्यक्ति के ये कार्य दिखाई ही नहीं देंगे।

आप विज्ञान की पुस्तक में पढ़ते हैं कि सारे आकाश में यह सभा मण्डप कितना बड़ा लगता है, कितने लोग बैठे हुए हैं, यह नगर कितना विशाल है! नगर के बाद प्रान्त, देश और दिशा के बाद सारी पृथ्वी। आपको पृथ्वी कितनी बड़ी लगती है! किन्तु इतनी बड़ी कब है? जब आपकी दृष्टि रायपुर के सन्दर्भ में और आपके घर के सन्दर्भ में होगी तो पृथ्वी बहुत बड़ी है। पर इस आकाश में पृथ्वी कितनी बड़ी है, आप लोग जो विज्ञान के छात्र हैं, वे पढ़े या जानते होंगे कि पृथ्वी कितनी नन्ही-सी है, कुछ नहीं है, उस अनन्त आकाश में इस पृथ्वी की भी कोई सत्ता नहीं है।

गंगा का प्रादुर्भाव कब हुआ? बलि के यज्ञशाला में बलि ने यह कहा कि ब्रह्मचारी, तुम जो माँगोगे मैं दूँगा। बलि तो दान की बात कर रहा है। दान धर्म है। जो व्यक्ति दान देते हैं, उनका नाम पत्थरों पर लिखा जाता है। ठीक उससे उत्साह बढ़ता है, प्रेरणा मिलती है। लिखने का तात्पर्य है दूसरों को भी प्रोत्साहन मिले, साथ ही कृतज्ञता भी है। यह दूसरी बात है, पर दानी अगर मान ले कि मैंने इतना दान दे दिया, तो यह ठीक नहीं। कितना दान दे दिया आपने भई? यह तो बहुत बढ़िया बात है कि छोटी-सी राशि का भी आप दान देते हैं तो हमारे त्यागात्मानन्द जी महाराज आपको धन्यवाद देते हैं। यह ठीक है, पर सचमुच हम लोग यह गर्व न पाल लें कि हम बहुत बड़ा दान देते हैं। कभी-कभी छोटा दान होता है, तो ताली नहीं बजती है, जरा बड़ी संख्या हो, तो ताली बज जाती है। एक बार मुझे बड़ा आनन्द आया। ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी नाम ले रहे थे। उसमें कभी-कभी बताते थे कि कुछ व्यक्तियों ने यह दान दिया, जो अपना नाम प्रगट नहीं करना चाहते। ताली बज जाती थी। मैंने देखा, उसी समय एक सज्जन आए और सभा के बीच कुछ रुपया स्वामीजी के हाथ में देने की चेष्टा की और बोले, गुप्त दान दे रहा हूँ, कृपया मेरा नाम न बताएँ। अब वह कितनी हँसी की बात थी! साक्षात् सबके सामने खड़े हैं, बुरा न मान जाएँ, यदि कोई ऐसा अनामी इसमें हों तो। यह तो हमलोगों की दशा है! मैं आपकी बात नहीं कह रहा हूँ, उसमें से मैं अलग नहीं हूँ। यह वृत्तियाँ तो व्यक्ति के जीवन में, सबके जीवन में होती हैं। विनयपत्रिका में गोस्वामीजी कितनी बढ़िया बात कहते हैं –

कैसे देऊँ नाथहिं खोरि।　**विनय-पत्रिका, पद-१५८**

प्रभु, मैं आपको कैसे दोष दूँ? फिर जो चित्रण करते हैं –

काम-लोलुप भ्रमत मन हरि भगति परिहरि तोरि।।
बहुत प्रीति पुजाइबे पर, पूजिबे पर थोरि।

अपनी पूजा कराने में तो मेरी बड़ी रुचि है, पर दूसरों की पूजा करने में तो कोई रुचि नहीं है।

देत सिख सिखयो न मानत, मूढ़ता असि मोरि।।

आगे कहते हैं –

करौं जो कछु धरौं सचि-पचि सुकृत-सिला बटोरि।

जो बहुत गरीब व्यक्ति हुआ करते थे, वे बेचारे जिनके पास खेत नहीं था, खेती नहीं कर सकते थे, तब जो वह खेत का स्वामी खेत से धान या गेहूँ का फसल कटवाकर ले जाता था, तो कुछ दाने खेत में गिर जाते थे, उसे गरीब लोग उठा लिया करते थे, उसे हमारे ग्रन्थों में सिला कहा गया है। गोस्वामीजी ने कहा महाराज, हम लोग जो थोड़-बहुत पुण्य करते हैं, वह क्या है? बोले –

करौं जो कछु धरौं सचि-पचि सुकृत-सिला बटोरि।
पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अँजोरि।।

दम्भ उसे भी चुरा ले जाता है। गोस्वामीजी एक-एक बात जो गिनाते हैं, वह अपने में और हम सब लोगों में भी वह वृत्ति है। वही दूसरों से पूजा कराने की वृत्ति, दूसरों की पूजा न करने की वृत्ति और उन्होंने कहा –

संग-बस किये सुभ सुनाये सकल लोक निहोरि।

अच्छे लोगों के संग के प्रभाव से कुछ अच्छा कार्य कर दिया, तो लोगों को सुनाते हैं, और अपने पाप को छिपाकर रखते हैं, किन्तु गोस्वामीजी अपने दोषों को प्रभु के सामने रखते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि व्यक्ति की दशा तो इसी प्रकार है। हाँ, यह बात और है कि बड़े चतुर हैं। मैंने कहा न कि सब कुछ कहने के बाद कहा जा सकता है कि जब तुम इस प्रकार के हो, तब तो बड़े गये बीते हो। तुम बता क्या रहे हो? तो बोले महाराज इसके बाद भी तो एक बात सुन लीजिए। क्या? बोले – 'एतेहुं पर तुम्हरो कहावत'। इतना होने पर भी मैं प्रचार यही करता हूँ कि मैं राम का दास हूँ, राम का सेवक हूँ, राम का किंकर हूँ। भगवान ने कहा, तुम्हें ऐसा कहते हुए लज्जा नहीं आती। तो उन्होंने तुरन्त कहा –

एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि।

मैंने तो लज्जा को घोलकर पी लिया है। कई लोग ऐसे होते हैं कि उनको लज्जा ही नहीं आती। तो चाहते क्या हो? गोस्वामीजी ने कहा महाराज, अब सब तो मैंने बता ही दिया है, अब इतना ही कह सकता हूँ –

एतेहुँ पर तुम्हरो कहावत, लाज अँचई घोरि।

ऐसा निर्लज्ज भी आपको कोई नहीं मिलेगा, चलिए मेरी इस निर्लज्जता पर ही रीझ जाइए –

निलजता पर रीझि रघुबर, देहु तुलसिहिं छोरि।।

इन कथाओं का तात्पर्य यही है कि कैसे हम सब अपने जीवन में इन साधनों को बड़ा महत्त्वपूर्ण समझ बैठते हैं! हम कोई भी कर्म करते हैं, जैसे धर्म करते हैं, साधन करते हैं, तो हम कहते हैं कि अरे हम तो हमेशा एकादशी व्रत करते हैं, जो नहीं करता उसे बड़ी हेय दृष्टि से देखते हैं। तुम एकादशी के दिन भी भोजन करते हो, मानो वह कितना बड़ा महान कार्य कर रहा है और सामने वाला कितना तुच्छ है। यह वृत्ति तो बहुधा दिखाई देती है। भगवान की लीला क्या है? यह बलि कौन है? प्रह्लाद का पौत्र। जन्म हुआ है दैत्य जाति में। भगवान कितने कृपालु हैं! इन्द्र से भी उनका नाता है। इन्द्र ने कहा कि बलि ने राज्य छीन लिया है। आप मेरा राज्य वापस दिला दीजिए। यही कथा आती है कि भगवान ने बलि से स्वर्ग का राज्य लेकर इन्द्र को वापस कर दिया। पर सच पूछा जाय कि धन्य कौन हुआ? धन्य इन्द्र हुआ कि धन्य बलि हुआ? इसका जब गणित करेंगे, तो स्पष्ट हो जायेगा कि इन्द्र तो बहुत घाटे में रहा, बलि तो लाभ ही लाभ में रहा। उसने यज्ञ किया, और यज्ञ में स्वयं भगवान आ गये। क्यों आ गये? यज्ञ में यदि भगवान नहीं आते, तो यज्ञ से भी अभिमान हो सकता है। भगवान यज्ञ को मानो परिपूर्णता देने के लिए आते हैं। कृपा क्या है भगवान की? बलि ने सारे संसार को जीत लेने के बाद में यह निर्णय किया कि मैं दान करूँगा, सब कुछ बाँट दूँगा। मानो गर्व हुआ कि मैं इतना बड़ा दानी हूँ। मैं अपना सब कुछ बाँट दूँगा, अपने पास कुछ भी नहीं रखूँगा। भगवान कितने कौतुकी हैं! वामन बनकर क्यों आए? मानो व्यंग्य था। जब तुम इतने बड़े दाता बन गये, तो फिर मैं तो तुम्हारे सामने वामन ही हूँ। वही लघु देखन की भावना। माँगनेवाला बड़ा कि देने वाला बड़ा? सूत्र वही है। अधिकांश व्यक्ति मानते हैं कि देने वाला बड़ा और लेने वाला छोटा। अपने ढंग से लोगों ने व्याख्या भी किया। जाटों में कहावत है –

मॉगन के बराबर और काम नहिं खोटा।
मॉगन गए बलि के द्वार राम भए छोटा।।

पर यह सही है क्या? **(क्रमशः)**

अच्छे संस्कार से सही बीजारोपण करें

सीताराम गुप्ता, दिल्ली

पंजाबी भाषा के रचनाकार डॉ. श्यामसुंदर दीप्ति की एक लघुकथा बीज पढ़ रहा था। कश्मीर सिंह अपने दोस्त सुरजन सिंह के साथ अपने बेटे दिलदार का, जिसकी एक अच्छे सरकारी पद पर नियुक्ति हुई है और जो अपने कॉलेज का बेस्ट एथलीट रहा है, मेडिकल करवाने सिविल सर्जन के कार्यालय पहुँचता है। जाँच के बाद डॉक्टर ने बताया कि दिलदार का ब्लड प्रेशर अधिक है। इस बात पर कश्मीर सिंह क्रोधित हो जाता है। तब उसका दोस्त सुरजन सिंह कहता है, ''चल छोड़। ये इस तरह ही करते हैं। पाँच सौ रुपए माँगता होगा और क्या? मार मुँह पर।'' सुरजन सिंह के ये कहने पर कश्मीर सिंह कहता है, ''चार-पाँच सौ की बात नहीं सुरजन मियाँ। बात यह है कि इसने दिलदार के दिल में बीज गलत बो दिया है और कुछ नहीं।'' लघुकथा में कश्मीर सिंह का कथन बहुत महत्त्वपूर्ण है। आज जिधर दृष्टि डालिए गलत बीज बोए जाते मिल जाएँगे।

ये गलत बीज ही सच्चाई और नैतिकता की राह में सबसे बड़ी रुकावट हैं। ये गलत बीज ही बढ़ते हुए भ्रष्टाचार के प्रमुख कारण हैं। जब हमारे साथ बार-बार ऐसा होता है, तो मन में यह विचार आता है कि क्यों न हम भी ऐसा ही करें? जब हमें बार-बार रिश्वत देनी पड़ती है, तो मन में विचार आता है कि जब भी मौका मिले, तो क्यों न हम भी रिश्वत लें या दूसरों की तरह ही गलत काम करें? हम भी ऐसा ही करें, जैसा सब करते हैं, क्योंकि इसमें वर्तमान में प्रत्यक्ष रूप से लाभ ही लाभ दिखता है। लेकिन कुछ भी करने से पहले कुछ बातें सोच लेना आवश्यक है। यदि सब लोग कुएँ में छलाँग लगाएँ, तो क्या हमें भी ऐसा ही करना चाहिए? सबकी देखादेखी कुएँ में छलाँग लगाने का परिणाम क्या होगा? स्वाभाविक है मौत। क्या बिना कारण के मौत को गले लगाना चाहिए? बिल्कुल नहीं। इसी प्रकार से किसी भी तरह के गलत बीज बोना हमारे लिए घातक ही होगा।

गलत बीज बोनेवाले लोगों के प्रति समाज में गलत धारणा ही होती है। कोई इन्हें पसन्द नहीं करता। दूसरों की तो छोड़िए, जो लोग गलत काम करते हैं, वे स्वयं ऐसे गलत कार्यों की भर्त्सना करते हैं। योग्य व्यक्ति इन्हें अपना रोल मॉडल नहीं मानते। अधिकांश युवक जब अपने कार्यक्षेत्र में पदार्पण करते हैं, तो उनके मन में अपने कार्य करने के क्षेत्र में अच्छे से अच्छा करने का उत्साह होता है। साथ ही अनेक युवक ईमानदारी से अपने कर्त्तव्यों का पालन करने के साथ-साथ हर जगह व्याप्त भ्रष्टाचार मिटाने के संकल्प के साथ नौकरी अथवा सेवा के क्षेत्र में आते हैं, लेकिन उपरोक्त गलत बीजों के बोने के कारण उनका उत्साह व संकल्प धरे-के-धरे रह जाते हैं। अन्त में वे भी गलत बीज बोने के काम में लग जाते हैं और यह दुश्चक्र और गहरा और घना होता जाता है।

शिक्षा का मनुष्य के जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रारम्भ भी गलत बीज बोने से होता है। सरकार के प्रयासों के बावजूद अधिकांश अच्छे स्कूलों में मोटे डोनेशन के बिना प्रवेश नहीं मिलता। यही कारण है कि हम अपने बच्चों को एक अच्छा इंसान बनाने के बजाय एक बड़ा आदमी बनाने को विवश हैं। बड़ा आदमी बनाने के लिए चाहे जो करना पड़े, चाहे जैसे बीज बोने पड़ें। लेकिन यह वास्तविकता है कि हर बच्चे को पता होता है कि उसके प्रवेश के लिए कितनी रिश्वत दी गई। स्कूलों में कैसे अभिभावकों और शिक्षकों से धोखाधड़ी की जाती है। शिक्षक भी ईमानदारी से पढ़ाना चाहते हैं, लेकिन जब उनसे चालीस हजार पर हस्ताक्षर करवाकर मात्र बारह-पंद्रह हजार रुपए उनकी हथेली पर रख दिए जाते हैं, तो इसका किसी पर भी अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा।

चिकित्सा के क्षेत्र में भी जब रिश्वत लेने को विवश हो, तब ये एक गंभीर बात है, लेकिन इसके मूल में गलत बीज बोने का ही प्रभाव है। यद्यपि डॉक्टरी की पढ़ाई बहुत अधिक श्रमसाध्य व व्ययसाध्य है और निजी मेडिकल कालेजों में

प्राय: डोनेशन देने पर ही प्रवेश मिलता है, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि एक डॉक्टर गलत ढंग से अपने रोगियों से पैसे ऐंठे ही। सरकारी अस्पतालों में आज भी अनेक ऐसे डॉक्टर हैं, जो नि:स्वार्थ भाव से मरीजों का उपचार करते हैं। कई प्राइवेट डॉक्टर भी बहुत कम या नाममात्र की फीस लेकर रोगियों का उपचार करते हैं। ऐसे डॉक्टर बाकी डाक्टरों के रोल मॉडल क्यों नहीं बनते? एक डॉक्टर द्वारा ईमानदारी से काम करने पर भी उचित आय और संतुष्टि मिलना कठिन नहीं है।

आज समाज में कुछ अच्छे कार्य भी हो रहे हैं, लेकिन अधिकांश भ्रष्टाचार ही व्याप्त है। सर्वत्र गलत बीज बोते दिखलाई पड़ेंगे। तो क्या इसलिए लोगों को अनैतिक होने अथवा भ्रष्ट आचरण करने की छूट दे दी जाए? कदापि नहीं। माना कि हमारे मार्ग में कुछ लोगों ने गलत बीज बो दिए, लेकिन जो सच्चाई के मार्ग हैं, जो सही बीज बो रहे हैं, वे हमें क्यों नहीं दिखलाई पड़ते? हम उनके जैसा केवल अच्छे बीज क्यों नहीं बोते? आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने एक निबंध 'क्या निराश हुआ जाए?' में एक स्थान पर लिखते हैं, ''एक बार रेलवे स्टेशन पर टिकट लेते हुए गलती से दस के बजाय सौ रुपये का नोट दे दिया और मैं जल्दी-जल्दी गाड़ी में आकर बैठ गया। थोड़ी देर में टिकट बाबू उन दिनों सेकंड क्लास के डिब्बे में हर आदमी का चेहरा पहचानता हुआ उपस्थित हुआ। उसने मुझे पहचान लिया और बड़ी विनम्रता के साथ मेरे हाथ में नब्बे रुपये रख दिए और बोला, 'यह बहुत बड़ी गलती हो गई थी। आपने भी नहीं देखा, मैंने भी नहीं देखा।' उसके चेहरे पर विचित्र संतोष की गरिमा थी। मैं चकित रह गया।''

उपरोक्त घटना से कई चीजें स्पष्ट होती हैं, जैसे हर दौर में अच्छे, ईमानदार और विनम्र व्यक्ति रहते हैं तथा जीवन में जब भी हम अच्छाई, ईमानदारी और विनम्रता आदि उदात्त गुणों का निर्वाह करते हैं, तो इससे न केवल हमारे चेहरे पर संतुष्टि का भाव झलकने लगता है, अपितु हमारे व्यक्तित्व में भी इसकी गरिमा दिखलाई पड़ने लगती है। अपने बीते हुए दिनों और घटनाओं पर थोड़ा दृष्टिपात कीजिए। आपने भी अपने जीवन में अवश्य ही अनेक बार ऐसी ही अच्छाई, ईमानदारी, कर्त्तव्यपालन और विनम्रता आदि गुणों का परिचय दिया होगा। उस समय आपकी मनोदशा कैसी थी और उस मनोदशा का आपके स्वास्थ्य पर क्या प्रभाव पड़ा था, थोड़ा याद करने का प्रयास कीजिए। जब भी हम ईमानदारी से अपने कर्त्तव्य का पालन करते हैं, किसी की मदद करते हैं अथवा अन्य कोई अच्छा कार्य करते हैं, तो इससे न केवल हमारे चेहरे पर संतुष्टि का भाव झलकने लगता है और हमारा व्यक्तित्व गरिमापूर्ण दिखलाई पड़ने लगता है, अपितु हमारे स्वास्थ्य में भी सकारात्मक परिवर्तन हो जाता है।

ईमानदारी मनुष्य का एक सर्वोत्तम गुण है। ईमानदारी का मनुष्य के व्यक्तित्व पर न केवल सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, अपितु ईमानदार मनुष्य का स्वास्थ्य भी बेईमान लोगों की तुलना में बहुत अच्छा पाया जाता है। जो व्यक्ति अपने कर्त्तव्य का पालन करता है, किसी की सहायता करता है अथवा नि:स्वार्थ सेवा करता है, उसे अत्यन्त संतुष्टि और आनन्द की प्राप्ति होती है। ईमानदार को अत्यन्त संतुष्टि और आनन्द की प्राप्ति होती है। संतुष्टि और आनन्द की अवस्था में व्यक्ति तनावमुक्त होकर स्वस्थ हो जाता है। अत: ईमानदारी की अवस्था मनुष्य के अच्छे स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी होती है। बेईमान व्यक्ति के चेहरे से जहाँ हमेशा धूर्तता टपकती रहती है, वहीं ईमानदार व्यक्ति का चेहरा सदैव आत्मविश्वास की गरिमा से दमकता रहता है व प्रभावशाली व्यक्तित्व के कारण सबके आकर्षण का केन्द्र बन जाता है।

यह वास्तविकता है कि आज बहुत-से लोग केवल उन क्षेत्रों में ही नौकरी करना चाहते हैं, जहाँ ऊपरी मोटी कमाई हो। इसके लिए लोग पहले से ही योजना बनाने लगते हैं। अपने बच्चों को ऐसे पाठ्यक्रमों में प्रवेश दिलाते हैं, जिन्हें पास करने के बाद उन्हें ऊपरी कमाई वाले सरकारी विभागों में नौकरी मिल सके। इसलिए ऐसे पाठ्यक्रम करवाने वाले संस्थानों की बाढ़-सी आई हुई है। मोटा पैसा खर्च करके ऐसी डिग्रियाँ प्राप्त की जाती हैं।

लेकिन मनुष्य और समाज के संतुलित विकास के लिए भ्रष्टाचार के इस दुश्चक्र को तोड़ना अनिवार्य है। इसका एक ही उपाय है और वह यह है कि हमारे मार्ग में जो गलत बीज बो दिए गए हैं, हम उनको भूलकर केवल सही बोए गए बीजों को याद रखें और केवल उनका अनुकरण करें। अपने जीवन में नैतिकता, सच्चाई आदि का पालन करते हुए समाज में सही बीजांकुरण का सन्देश दें। ○○○

आध्यात्मिक जिज्ञासा (५०)

स्वामी भूतेशानन्द

श्रीमाँ सारदा ने इससे भी अधिक कठिन बात कही है – संन्यासी काठ की महिला होने पर भी उसे पैर से पलटकर नहीं देखेगा। श्रीमद्भागवत में यह श्लोक है –

पदापि युवतीं भिक्षुर्न स्पृशेद् दारवीमपि।
स्पृशन् करीव बध्येत करिण्या अङ्गसङ्गतः ।।१३।।
नाधिगच्छेत् स्त्रियं प्राज्ञः कर्हिचिन्मृत्युमात्मनः ।
बलाधिकैः स हन्येत गजैरन्यैर्गजो यथा ।।१४।।

(श्रीमद्भागवत ११/८/१३-१४)

राजन्! मैंने हाथी से यह सीखा कि संन्यासी को कभी पैर से भी काठ की बनी हुई स्त्री का स्पर्श न करना चाहिए। यदि वह ऐसा करेगा तो जैसे हथिनी के अंग-संग से हाथी बँध जाता है, वैसे ही वह भी बँध जायेगा।।१३।। विवेकी पुरुष किसी भी स्त्री को कभी भी भोग्यरूप से स्वीकार न करे, क्योंकि यह उसकी मूर्तिमती मृत्यु है। यदि वह स्वीकार करेगा, तो हाथियों से हाथी की तरह अधिक बलवान अन्य पुरुषों के द्वारा मारा जायगा।।१४।।

अर्थात् भिक्षु काष्ठ की युवती का पैर से भी स्पर्श नहीं करेंगे। यदि स्पर्श करते हैं, तो हथिनी के अंग-संयोग के लिए हाथी जैसे गर्त में, गड्ढे में गिरकर नष्ट हो जाएँगे। विवेकी व्यक्ति कभी भी अपनी मृत्युस्वरूपा किसी नारी से आसक्त नहीं होंगे। यदि आसक्त होते हैं, तो जैसे हाथी दूसरे हाथी के द्वारा आक्रान्त हो कर विनष्ट हो जाता है, उसी प्रकार वह भी बलवान पुरुष द्वारा वध कर दिए जाएँगे।

प्रश्न – ठाकुर और माँ कैसे अभेद हैं?

महाराज – जैसे ब्रह्म और शक्ति अभेद हैं, उसी प्रकार वे भी अभेद हैं।

प्रश्न – स्वामीजी समाधि में निमग्न होना चाहते थे। इसलिए ठाकुर ने कहा था – इससे भी उच्च अवस्था है। वह अवस्था क्या है?

महाराज – परोपकार में आत्मविसर्जन, आत्मसमर्पण करना।

प्रश्न – महाराज! ठाकुर स्वामीजी को कह रहे हैं, तुमको अपना सर्वस्व देकर रिक्त, कंगाल हो गया। वे 'कंगाल हुआ' क्यों कह रहे हैं?

महाराज – आनन्दित होकर कह रहे हैं, और क्या!

– फिर रो क्यों रहे हैं?

महाराज – वह भी आनन्दित होकर ही। ये आनन्द के आँसू हैं। यह सोचकर कि इतने दिनों बाद एक सुयोग्य व्यक्ति मिला, जो उनके भाव का उत्तराधिकारी है। शक्ति देने से ही क्या शक्ति कम हो जाती है? '**पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते।**' – पूर्ण से पूर्ण निकालने पर पूर्ण ही शेष बचता है।

प्रश्न – महाराज! हमलोगों के शास्त्र-अध्ययन का क्या उद्देश्य है? हमलोगों को कौन-कौन से शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिए। कई लोग कहते हैं, शास्त्र के अध्ययन से पाण्डित्य, विद्वत्ता होती है और इसके कारण विद्वत्ता का अहंकार होता है।

महाराज – क्या कहा, शास्त्र के अध्ययन से अहंकार होता है? जिसने कहा है, क्या उसने शास्त्र पढ़ा है?

– महाराज! ठीक यही बात एक बार गम्भीरानन्द जी महाराज ने कही थी। एक बार मैंने उनसे पूछा था – कई लोग कहते हैं कि शास्त्र-अध्ययन करने की क्या आवश्यकता है? शास्त्र पढ़ने से पाण्डित्य का अहंकार होता है। महाराज ने भी अविलम्ब कहा था – किसने कहा कि शास्त्र पढ़ने से अहंकार होता है? जिसने कहा है, क्या उसने शास्त्र पढ़ा है?

महाराज – (थोड़ा हँसकर) देखा तो, सब एक स्वर में बँधा हुआ है। ठाकुर ने कहा है – एक व्यक्ति ने पत्र लिखा था। पत्र पढ़ना हुआ नहीं, वह खो गया। तब सभी मिलकर उसे खोजने लगे। जब पत्र मिल गया, तो उसने पढ़कर देखा कि उसमें लिखा है, पाँच सेर सन्देश (मिठाई) और एक वस्त्र भेज देना। उसके बाद उसने पत्र फेंक दिया और

पाँच सेर सन्देश और एक वस्त्र की व्यवस्था करने लगा। वैसे ही शास्त्र का सार जान लेने के बाद उसे पढ़ने की क्या आवश्यकता है? तब साधन-भजन करना चाहिए। यही बात है। शास्त्र का सिद्धान्त जान लेने के बाद शास्त्र पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। तत्पश्चात् उसे जीवन में आचरण करना होगा, जीवन में ग्रहण करना होगा।

– कब तक शास्त्र पढ़ना होगा?

महाराज – जब तक विचार दृढ़ नहीं हो जाता।

– शास्त्र पढ़कर तो अहंकार हो सकता है कि मैं विद्वान् हूँ।

महाराज – नहीं, अहंकार नहीं होता। क्यों नहीं होगा, बता रहा हूँ – शास्त्र में जो करने और होने की बात कही गयी है, जब देखा जायेगा कि उसमें से हमारा कुछ भी नहीं हुआ, तब अहंकार कहाँ से होगा?

– कैसी पुस्तकें पढ़नी चाहिए ?

– जैसे हमलोगों को अब भौतिक विज्ञान पढ़ने की कोई आवश्यकता नहीं है। हमलोगों के जीवन से जिसका सम्बन्ध है और साधन-भजन हेतु उपयोगी है, उन्हीं पुस्तकों को पढ़ना चाहिए।

– तब वैसी पुस्तकों को बहुत मनोयोग, एकाग्रता से पढ़ना होगा।

महाराज – केवल एकाग्रता से पढ़ना नहीं। विद्वान् लोग भी एकाग्रता से पढ़ते हैं, किन्तु अपने जीवन में कोई आचरण नहीं करते। साथ-ही-साथ श्रद्धा, निष्ठा आदि रहनी चाहिए।

– कई बार तो पढ़ना अच्छा लगता है, आनन्द मिलता है, इसलिये पढ़ते हैं।

महाराज – अच्छा लगना या आनन्द प्राप्त करना, शास्त्र-अध्ययन का उद्देश्य नहीं है। आनन्द तो उपन्यास, नाटक पढ़कर भी लोगों की सहायता से प्राप्त कर लेते हैं और अधिक सरलता से आनन्द संगीत में पाते हैं। कहते हैं –

काव्येन दर्शनं हन्ति, काव्यं गीतेन हन्यते।

गीतं च स्त्रीविलासेन, सर्व हन्ति बुभूक्षुता।।

अर्थात् दर्शनादि शास्त्र की अपेक्षा काव्य मनोहर होता है। लेकिन काव्य-रसास्वादन हेतु समय की आवश्यकता होती है, विचार करना पड़ता है। किन्तु उससे भी सहज संगीत में रस मिलता है। केवल कान में जाने से ही हुआ। यदि इन्द्रिय सुख-भोग में आसक्ति हो, तो ऐसे गीत भी पड़े रहते हैं, फिर उसमें भी रस नहीं मिलता और दरिद्रता सर्वस्व रस का, आनन्द का हरण कर लेती है। भूखा रहने पर काव्य, गीत, इन्द्रिय सुख-भोग कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

– महाराज! समय बिताने के लिये तो पुस्तक पढ़ना एक अच्छा अभ्यास है।

महाराज – नहीं, शास्त्र पढ़ने का उद्देश्य समय बिताना नहीं है। यदि समय बिताना उद्देश्य हो, तो सबसे सरल तास खेलना है। (महाराज ने तास खेलते समय जैसे तास धरती पर फेंकते हैं, वैसी मुद्रा दिखाया। (सभी जोर से हँसते हैं।)

– महाराज! एक-दूसरे व्यक्ति के साथ रहने से पढ़ने में सुविधा होती है।

महाराज – हाँ, गप करने में सुविधा होती है। (सभी हँसते हैं) ***(क्रमश:)***

पृष्ठ ५७ का शेष भाग

दूर होते हैं। आसन-प्राणायाम से 'मैं शरीर हूँ' ऐसा अज्ञान दूर होता है। और मैं अशरीरी हूँ, ऐसी विद्या-भावना पैदा होती है। इस प्रकार योगाभ्यास विद्या का कारण होता है। लेकिन यह भी समझ लेना चाहिए कि योग चित्त की एक विशेष अवस्था है। कोई भी चित्तावस्था मोक्ष की साक्षात् हेतु नहीं हो सकती। वस्तुत: मोक्ष का कोई उपादान कारण नहीं है। बन्धन का अर्थ है गुणों और पुरुष का संयोग। संयोग यानी अपृथक्-ज्ञान। यह ज्ञान विवेक द्वारा दूर होता है। योग अशुद्धि को दूर करने का और विवेक-प्राप्ति का कारण है। इस तरह योगांग-अनुष्ठान से विवेक ज्ञान और उससे कैवल्य प्राप्त होता है। ○○○

माँ के पाँच बच्चे हैं। उसने किसी को खिलौना, किसी को गुड़िया और किसी को खाना देकर भुला रखा है, उनमें से जो खिलौना फेंककर 'माँ माँ' कहकर रोने लगता है, माँ झट उसे गोदी में उठाकर शान्त करने लगती है। हे जीव, तुम कामिनी-कांचन में भूले हुए हो। यह सब फेंककर जिस समय तुम जगन्माता के लिए रोने लगोगे, उसी क्षण वे आकर तुम्हें गोदी में ले लेंगी।

– श्रीरामकृष्ण देव

कर्तव्यनिष्ठा

स्वामी ओजोमयानन्द

रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

मोहन पोलियो से ग्रसित एक दिव्यांग युवक था। वह अपने गाँव में मजदूरी किया करता था, पर उसके दिव्यांग होने के कारण उसे पारिश्रमिक कम दी जाती थी। इसलिए घर के लोग उससे असंतुष्ट थे तथा उसे एक बोझ की तरह देखते थे। इस कारण मोहन दुखी रहता था। एक दिन वह घर छोड़कर शहर चला गया, पर वहाँ न तो वह रहने-खाने की कोई व्यवस्था कर सका और न कोई कार्य जुटा सका। तब वह हताश होकर एक आश्रम के बाहर बैठकर भीख माँगने लगा। एक दिन उस आश्रम के कार-ड्राइवर ने गाड़ी वहाँ खड़ी की, जहाँ मोहन भीख माँग रहा था। उसकी मोहन से बातचीत हुई। ड्राइवर को मोहन अभावग्रस्त लगा। वह मोहन को आश्रम ले जाकर वहाँ के एक महाराज से मिलवाया। वह आश्रम कोलकाता का रामकृष्ण मिशन, राहड़ा था। वहाँ महाराज ने उसे कुछ कार्य दिए। वह कुछ दिन कार्य करता रहा, पर पता नहीं क्यों उसे वहाँ अच्छा नहीं लग रहा था। इसलिए वह फिर किसी अज्ञात स्थान पर चला गया। कई महीने बीत गये। एक दिन आश्रम के एक संन्यासी को अस्पताल में भर्ती करवाने के लिए वही ड्राइवर साथ गया था, तभी अकस्मात् उसकी भेंट मोहन से हुई। मोहन अस्पताल में भर्ती था और उसी दिन अस्पताल से उसकी छुट्टी हो रही थी। मोहन का अब तक कोई ठिकाना न था। इसलिए ड्राइवर उसे अपने घर ले आया। इसके बाद मोहन उसी परिवार में रहने लगा। एक बार परिवार के लोग तीर्थ के लिए कामारपुकुर और जयरामवाटी गए। उनके साथ मोहन भी गया। उसे रामकृष्णदेव का जन्म-स्थान कामारपुकुर बहुत अच्छा लगा। कुछ दिन वहाँ रहकर वे सब वहाँ से वापस आ गए। मन ही मन मोहन को उस परिवार में रहना उन सब पर बोझ बनने जैसा लगने लगा। अत: वह वहाँ से किसी से कुछ कहे बिना कामारपुकुर चला गया। वहाँ जाकर उसने रामकृष्ण मठ, कामारपुकुर के एक संन्यासी से भेंट की। उसे अभावग्रस्त समझकर वहाँ के महाराज ने उसे कृषि कार्य में लगा दिया। वह बहुत निष्ठावान था। इसलिए उसके साथ कार्य करनेवाले कर्मचारियों को भी समय पर आना-जाना और कार्य करना पड़ता था। उसके रहते आश्रम से कोई कुछ नहीं ले जा सकता था। इसके चलते कुछ लोगों ने महाराज से उसकी उलटी शिकायत की। उसकी निष्ठा और शारीरिक अवस्था को देखकर वहाँ के अध्यक्ष महाराज ने उसे चौकीदार का कार्य सँभालने के लिए कहा, जिससे उसे शारीरिक कष्ट भी न हो। मुख्य द्वार के पास उसके रहने के लिए एक छोटा-सा कमरा भी था। वह बड़ी निष्ठा-पूर्वक चौकीदारी करता था तथा मुख्य द्वार के समीप की जगह पर फूल के पौधे लगाता था। वह फूलों को चुनकर मन्दिर में दिया करता था। उसकी कार्यनिष्ठा को देखते हुए कृषि कार्य देखनेवाले महाराज ने मुख्य द्वार के समीप की पूरी जगह पर कार्य करने की उसे स्वतंत्रता दे दी। अब वह फूल के साथ फल आदि भी लगाने लगा। उसकी भक्ति भी उत्तम थी। मुख्य द्वार पर बैठे-बैठे वह जप किया करता था तथा खाली समय में मुख्य द्वार के निकट कृषि-कार्य करता था। उसका जीवन आश्रममय हो चुका था। वह आश्रम की किसी भी क्षति को अपनी क्षति समझता था तथा प्रत्येक कार्य को अपना कार्य समझता था। उसके लिए आश्रम के किसी भी कार्य के लिए समय का कोई बंधन नहीं था। उसे जब-जहाँ भी जो उचित लगे, वह उस कार्य को करता था। विशेष उत्सवों पर साधु-सेवा भी करता था। उसके भय से चोर आश्रम में प्रवेश करने का साहस नहीं करते थे। उसके भय से कोई आश्रम के नियम तोड़ने का साहस नहीं कर सकता था। यदि मन्दिर में बैठे किसी भक्त का मोबाइल बजता, तो वह उन्हें परामर्श देता कि वे अपने मोबाइल बंद रखें, ताकी बाकी भक्त शान्ति से बैठकर ध्यान, साधना कर सकें। यदि संध्या के समय ब्रह्मचारी मुख्य द्वार से बाहर निकलते, तो वह उन्हें सचेत कर देता कि ब्रह्मचारियों का संध्या के समय आश्रम से बाहर जाना उचित नहीं है। वह मधुमेह का रोगी था। एक दिन शरीर में शर्करा की मात्रा अत्यन्त कम हो जाने से अकस्मात् उसकी मृत्यु हो गई। वह आश्रम के सभी लोगों के हृदय में स्थान बना चुका था। अत: उसके अन्तिम संस्कार में आश्रम के सभी साधु-ब्रह्मचारी तथा कर्मचारी सम्मिलित हुए थे।

इस प्रकार वह आज भी एक श्रेष्ठ चौकीदार के रूप में

स्मरण किया जाता है। वास्तव में कर्तव्यनिष्ठ होना ही सफल जीवन की पहचान है। आइए, इसी तथ्य पर विचार करें।

कर्तव्य और अधिकार

जिस प्रकार सिक्के के दोनों पहलू उससे जुड़े रहते हैं, उसी प्रकार कर्तव्य और अधिकार भी सदैव मिश्रित रूप से ही होते हैं। अधिकांश लोग अपने अधिकार की बातें ही करते हैं, पर उसके साथ कर्तव्य सदा जुड़ा हुआ रहता है। हम तभी अधिकार प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं, जब हम अपने कर्तव्य का निर्वाह करते हैं, अन्यथा मात्र अधिकार प्राप्त करते रहना सर्वथा अनुचित है। जैसे हम एक राष्ट्र के नागरिक हैं, हमें अच्छी सड़कें चाहिए, सुविधासम्पन्न अस्पताल चाहिए, अच्छी पाठशाला और अच्छे शिक्षक चाहिए, पर हम कर का भुगतान नहीं करते। इस प्रकार शासन को दोष देना कि 'हमें अमुक सुविधाएँ उपलब्ध नहीं होतीं' कहना अनुचित है। क्योंकि जिस कर के भुगतान से ये सुविधाएँ उपलब्ध हो सकेंगी, उस कर का भुगतान करना हमारा ही कर्तव्य था। माता-पिता की सम्पत्ति में संतान का अधिकार होता है, परन्तु इसके साथ ही माता-पिता की देखभाल करना भी संतान का कर्तव्य होता है।

कर्तव्य की भित्ति प्रेम है

कर्तव्य पालन दो प्रकार से किया जाता है – पहला बुद्धिपूर्वक और दूसरा प्रेमपूर्वक। इसे हम दो उदाहरणों से समझ सकते हैं। जैसे पुत्र अपने पिता की सेवा यह सोचकर कर रहा है कि उसके पिता ने उसे पाला-पोषा, बड़ा किया, पढ़ाया-लिखाया। इसलिए उसका कर्तव्य बनता है कि वह भी अपने पिता की सेवा करे, उनकी देखभाल करे। इस प्रकार वह अपने पिता की सारी सुविधाओं का ख्याल रखता है और उनकी सेवा करता है। इस प्रकार का कर्तव्य-पालन बुद्धिपूर्वक होता है। वहीं दूसरी ओर माँ अपने संतान को प्रेम करती है। उसकी संतान भविष्य में उसकी देखभाल करेगी या नहीं, इसकी चिन्ता न करते हुए वह स्वाभाविक रूप से अपने प्रेम के कारण उसकी देखभाल करती है, इस प्रकार का कर्तव्य-पालन हृदयपूर्वक अर्थात् प्रेमपूर्वक होता है। वास्तव में जो प्रेम करता है, वही व्यक्ति कर्तव्य का ठीक-ठीक पालन कर सकता है। प्रेमपूर्वक किया गया कर्तव्य-पालन स्वाभाविक भी होता है। यदि पुत्र पिता के प्रति कर्तव्य पालन करे, पर उसे प्रेम न हो, तो इस प्रकार का कर्तव्य-पालन उसे कष्ट ही देगा, तब वह सेवा उसे बोझ ही लगता है। एक सैनिक अपने राष्ट्र से प्रेम करता है, इसलिए वह अपने राष्ट्र के लिए अपनी जान की बाजी लगा देता है। वहीं एक दूसरा व्यक्ति अपने राष्ट्र के लिए थोड़ा-सा कर (टैक्स) देने से भी बचने का प्रयास करता है और इसके लिए वह विभिन्न गलत मार्गों का प्रयोग करता है। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि कर्तव्य की वास्तविक भित्ति प्रेम है।

कर्तव्यनिष्ठा और विश्वसनीयता

जिस प्रकार एक कर्तव्यनिष्ठ चौकीदार के रहने से घर के लोग निश्चिन्त होकर सो सकते हैं। यदि एक गाड़ी चालक ठीक ढंग से गाड़ी चलाए, तो कितने ही लोगों का जीवन सुरक्षित रहता है, अत: वह कार्य छोटा लगने पर भी महत्त्वपूर्ण है। समाज में प्रत्येक कार्य की एक महिमा और आवश्यकता भी है। उसी प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यही नियम लागू होता है। एक अधिकारी कर्तव्यनिष्ठ कर्मचारी चाहता है, वहीं समाज कर्तव्यनिष्ठ पुलिस चाहता है, देश कर्तव्यनिष्ठ नागरिक चाहता है। हमारी कर्तव्यनिष्ठा से हमारी विश्वसनीयता बढ़ती है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी जगह कर्तव्यनिष्ठ हो जाएँ, तो संसार में कोई समस्या ही नहीं रह जाएगी।

कर्तव्य पालन से शान्ति

आज प्रत्येक मानव-मन शान्ति की खोज में दौड़ रहा है। परन्तु कर्तव्य-पालन के माध्यम से भी हमें शान्ति मिल सकती है। इस सम्बन्ध में सम्भवत: हम विचार ही नहीं करते। जब भी हम अपने कर्तव्य का पालन करते हैं, तो हमें सफलता मिले या असफलता, सर्वप्रथम हमें मन की शान्ति अवश्य मिलती है कि मैंने अपना कर्तव्य तो पूर्ण किया। एक सिपाही शत्रु से लड़ते-लड़ते अपने प्राण न्योछावर कर देता है, इस पर उसे विजय मिले या ना मिले, परन्तु उसके मन में एक अचल शान्ति होती है कि उसने अपने राष्ट्र के प्रति कर्तव्य निभाया है। वस्तुत: कर्तव्य पालन से हम इस जीवन में उन्नति करते हैं, शान्ति पाते हैं और तत्पश्चात् यही कर्तव्य-निष्ठा हमें परम शान्ति की ओर ले जाती है।

कर्तव्यनिष्ठा महानता का द्वार है

कर्तव्यनिष्ठा महानता का द्वार है। इसके लिए हमें अलग से कुछ करने की आवश्यकता नहीं है। न ही किसी को मंत्री बनने की आवश्यकता है, न किसी को कोई विशेष पद प्राप्त करने की आवश्यकता है। वस्तुत: हम जिस स्थान पर कार्यरत हैं, उसी कार्य को निष्ठा के साथ करने से हम महानता के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं। एक विद्यार्थी अपनी निष्ठा अपने विद्या अध्ययन पर पूर्ण रूप से लगाए,

तो वह श्रेष्ठ विद्यार्थी हो जाता है। उसी प्रकार माता-पिता अपनी संतान को अच्छा स्वास्थ्य, अच्छी शिक्षा और अच्छे संस्कार दें, तो वे श्रेष्ठ माता-पिता बन जाते हैं। यदि शिक्षक कर्तव्यनिष्ठ हों, तो वे शिक्षा के माध्यम से महान शिक्षक बन सकते हैं, जिनका सम्मान उनके विद्यार्थी मृत्युपर्यन्त करेंगे। इसी प्रकार प्रत्येक व्यक्ति अपनी निष्ठा के माध्यम से महान बन सकता है।

महाभारत की कथा और उसकी प्रेरणा

एक तरुण संन्यासी वन में गया। वहाँ उसने दीर्घकाल तक ध्यान-भजन तथा योगाभ्यास किया। अनेक वर्षों की कठिन तपस्या के बाद एक दिन जब वह एक वृक्ष के नीचे बैठा था, तो उसके ऊपर वृक्ष से कुछ सूखी पत्तियाँ आ गिरीं। उसने ऊपर निगाह उठाई, तो देखा कि एक कौवा और एक बगुला पेड़ पर लड़ रहे हैं। यह देखकर संन्यासी को बहुत क्रोध आया। उसने कहा, 'यह क्या! तुम्हारा इतना साहस कि तुम यह सूखी पत्तियाँ मेरे सिर पर फेंको?' इन शब्दों के साथ संन्यासी की आँखों से आग की एक ज्वाला निकली, और वे बेचारी दोनों चिड़ियाँ जलकर भस्म हो गईं। अपने में यह शक्ति देखकर वह संन्यासी बड़ा खुश हुआ। उसने सोचा, 'वाह, अब तो मैं दृष्टि मात्र से कौवे-बगुले को भस्म कर सकता हूँ।' कुछ समय बाद वह भिक्षा के लिए एक गाँव को गया। गाँव में जाकर एक दरवाजे पर खड़ा होकर पुकारा, 'माँ कुछ भिक्षा मिले।' भीतर से आवाज आई, 'थोड़ा रुको, मेरे बेटे!' संन्यासी ने मन में सोचा, 'अरे दुष्टा, तेरा इतना साहस कि तू मुझसे प्रतीक्षा कराये ! अब भी तू मेरी शक्ति नहीं जानती?' संन्यासी ऐसा सोच ही रहा था कि भीतर से फिर एक आवाज आई, 'बेटा, अपने को इतना बड़ा मत समझ! यहाँ न तो कोई कौवा है और न बगुला।' यह सुनकर संन्यासी को बड़ा आश्चर्य हुआ। बहुत देर तक खड़े रहने के बाद अन्त में घर में से एक स्त्री निकली और उसे देखकर संन्यासी उसके चरणों पर गिर पड़ा और बोला 'माँ', तुम्हें यह सब कैसे मालूम हुआ?' स्त्री ने उत्तर दिया, 'बेटा! न तो मैं तुम्हारा योग जानती हूँ और न तुम्हारी तपस्या। मैं तो एक साधारण स्त्री हूँ। मैंने तुम्हें इसलिए थोड़ी देर रोका था कि मेरे पति-देव बीमार हैं और मैं उनकी सेवा-शुश्रूषा में संलग्न थी। यही मेरा कर्तव्य है। जीवनभर मैं इसी बात का यत्न करती रही हूँ कि मैं अपने कर्तव्य का पूर्ण रूप से निर्वाह करूँ। जब मैं अविवाहित थी, तब मैंने अपने माता-पिता के प्रति पुत्री का कर्तव्य-पालन किया और अब जब मेरा विवाह हो गया है, तो मैं अपने पतिदेव के प्रति पत्नी का कर्तव्य-पालन करती हूँ। बस, यही मेरा योगाभ्यास है। अपना कर्तव्य करने से ही मेरे दिव्य चक्षु खुल गए हैं, जिससे मैंने तुम्हारे विचारों को जान लिया और मुझे इस बात का भी पता चल गया कि तुमने वन में क्या किया है। यदि तुम्हें इससे भी कुछ उच्चतर तत्त्व जानने की इच्छा है, तो अमुक नगर के बाजार में जाओ, वहाँ तुम्हें एक व्याध मिलेगा। वह तुम्हें कुछ ऐसी बातें बताएगा जिन्हें सुनकर तुम बड़े प्रसन्न होगे।' संन्यासी ने विचार किया, 'भला मैं उस शहर में उस व्याध के पास क्यों जाऊँ? परन्तु उसने अभी जो घटना देखी, उसे सोचकर उसकी आँखें कुछ खुल गयीं। अतएव वह उस शहर में गया। जब वह शहर के नजदीक आया, तो उसने दूर से एक बड़े मोटे व्याध को बाजार में बैठे हुए और बड़े-बड़े छुरों से मांस काटते हुए देखा। वह लोगों से अपना सौदा कर रहा था। संन्यासी ने मन ही मन सोचा, 'हरे! हरे! क्या यही वह व्यक्ति है, जिससे मुझे शिक्षा मिलेगी? दिखता तो यह शैतान का अवतार है!' इतने में व्याध ने संन्यासी की ओर देखा और कहा, 'महाराज, क्या उस स्त्री ने आपको मेरे पास भेजा है? कृपया बैठ जाइए। मैं जरा अपना काम समाप्त कर लूँ।' संन्यासी ने सोचा, 'यहाँ मुझे क्या मिलेगा?' खैर, वह बैठ गया। इधर व्याध अपना काम लगातार करता रहा और जब वह अपना काम पूरा कर चुका, तो उसने अपने रुपए-पैसे समेटे और संन्यासी से कहा, 'चलिए महाराज, घर चलिए।' घर पहुँचकर व्याध ने उसे आसन दिया और कहा, 'आप यहाँ थोड़ा ठहरिए।' व्याध अपने घर में चला गया। उसने अपने वृद्ध माता-पिता को स्नान कराया, उन्हें भोजन कराया और उन्हें प्रसन्न करने के लिए जो कुछ कर सकता था, किया।

उसके बाद वह उस संन्यासी के पास आया और कहा, 'महाराज, आप मेरे पास आए हैं। अब बताइए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?' संन्यासी ने उससे आत्मा तथा परमात्मा सम्बन्धित कुछ प्रश्न किये और उनके उत्तर में व्याध ने उसे उपदेश दिया, वही महाभारत में व्याध-गीता के नाम से प्रसिद्ध है। व्याध-गीता में हमें वेदान्त दर्शन की एक पराकाष्ठा के दर्शन होते हैं। जब व्याध अपना उपदेश समाप्त कर चुका, तो संन्यासी को बड़ा आश्चर्य हुआ और

उसने कहा, 'फिर आप इस शरीर में क्यों हैं? इतने ज्ञानी होते हुए भी आप व्याध-शरीर में क्यों हैं? इतना गन्दा और घिनौना कार्य क्यों करते हैं?' व्याध ने उत्तर दिया, 'वत्स, कोई भी कर्तव्य गंदा नहीं है। कोई भी कर्तव्य अपवित्र नहीं है। मेरे जन्म ने मुझे इस परिस्थिति में रख दिया। बचपन से ही मैंने यह व्यापार सीखा है, मैं अनासक्त हूँ और अपना कर्तव्य उत्तम रूप से किये जा रहा हूँ। मैं गृहस्थ के नाते अपना कर्तव्य करता हूँ और अपने माता-पिता को प्रसन्न रखने के लिए जो कुछ मुझसे बन पड़ता है, करता हूँ। न तो मैं तुम्हारा योग जानता हूँ और न मैं कभी संन्यासी ही हुआ। संसार छोड़कर मैं कभी वन में नहीं गया। परन्तु फिर भी जो कुछ तुमने मुझसे सुना तथा देखा, वह सब मुझे अनासक्त भाव से अपनी अवस्था के अनुरूप कर्तव्य का पालन करने से ही प्राप्त हुआ है।'[१]

महाभारत की इस घटना के माध्यम से हम कर्तव्यनिष्ठा का फल समझ सकते हैं। एक कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति अपने कर्तव्य को करते हुए वह प्राप्त कर लेता है, जो एक योगी योग साधना के माध्यम से प्राप्त करता है। इस प्रकार व्यक्ति आत्म संतुष्टि तो लाभ करता ही है, साथ ही साथ समाज की सेवा, परिवार की सेवा आदि के द्वारा समाज को संतुष्ट करता है। समाज में रहते हुए हमें सभी प्रकार के कर्मों की आवश्यकता पड़ती है, अत: हमें किसी कर्म को छोटा या बड़ा नहीं समझना चाहिए, बल्कि अनासक्त होकर अपने-अपने कर्तव्य को निष्ठापूर्वक किए जाने को ही महत्त्व देना चाहिए।

उपसंहार

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, 'किसी भी प्रकार के कर्तव्य की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। जो व्यक्ति कोई छोटा या नीचा काम करता है, केवल इसलिए ऊँचा काम करनेवाले की अपेक्षा छोटा या हीन नहीं हो जाता। मनुष्य की परख उसके कर्तव्य की चंचलता या हीनता की कसौटी पर नहीं होनी चाहिए, वरन् यह देखना चाहिए कि वह कर्तव्यों का पालन किस ढंग से करता है। मनुष्य की सच्ची पहचान तो अपने कर्तव्यों को करने की उसकी शक्ति तथा शैली में होती है। एक मोची, जो कम-से-कम समय में सुन्दर और मजबूत जूतों की जोड़ी तैयार कर सकता है, अपने व्यवसाय में उस प्राध्यापक की अपेक्षा कहीं अधिक श्रेष्ठ है, जो अपने जीवन भर प्रतिदिन थोथी बकवास ही किया करता है।'[२] ○○○

सन्दर्भ सूची – **१.** विवेकानन्द साहित्य खंड ३, पृ. ४३-४५ **२.** वही, खंड ९, पृ. १८३-१८४

प्रेरक लघुकथा

परधन विष से भी विषैला

शरद चन्द्र पेंढारकर

चीन के सम्राट को जब पता चला कि शहर में मेनासियत नामक कोई संत आए हैं, तो उसने उनसे मिलने की सोची। उसे मंत्रियों ने जब बताया कि संत पक्का फकीर है। वह किसी से मिलता-जुलता नहीं। सबसे अलग रहकर जीना चाहता है, तो सम्राट ने मंत्रियों से उसका पता लगने को कहा।

एक दिन महामंत्री ने जब संत को मछलियाँ मारते देखा तो वह राजा को उसके पास ले गया। सम्राट ने साथ में लाए थैले से सुवर्ण मुद्राएँ निकालकर उनकी आवाज से अपने आने की सूचना देनी चाही। संत ने सुवर्ण मुद्राओं को देखकर एक गड्ढे की ओर इशारा करते हुए सम्राट से पूछा, ''उस गड्ढे में क्या है?'' सम्राट वहाँ जाकर वापस आया और उसने बताया, उसमें एक कछुआ है। तब संत ने कहा, ''मैंने सुना है कि राजमहल में एक कछुआ है, जो सोने से मढ़ा हुआ है।'' आपने सही सुना है, राजमहल में सोने का बनाया हुआ एक कछुआ है। वह राज चिह्न है। नए वर्ष के पहले दिन उसकी पूजा की जाती है। उस दिन भव्य समारोह आयोजित किया जाता है।'' सम्राट ने बड़े गर्व से बताया।

''तब तो वह कछुआ बड़ा भाग्यवान है। अब आप इस कछुए से कहो कि राजमहल में तुम मेरे साथ चलो वहाँ सोने से तुम्हें मढ़ा जाएगा। सम्राट ने तुरन्त कहा, ''यह कछुआ बोल सुन नहीं सकता, तो जवाब कैसे देगा? अगर बोल भी लेता, तो यह हाँ कभी नहीं कहेगा।'' ''क्यों'' पूछने पर सम्राट ने कहा, ''क्योंकि यह जान लेगा कि सोने से मढ़े जाने पर वह जीवित नहीं रहेगा।'' ''तो बस मुझे कछुआ ही समझो।'' मेनासियत ने कहा, ''मैं फकीरी जीवन में ही सन्तुष्ट हूँ। मैं अपरिग्रही हूँ। किसी भी चीज का मुझे लोभ-मोह नहीं। निर्बाध रूप से मैं भगवत् चिन्तन में लगा रहना चाहता हूँ।''

'अपरिग्रह का अर्थ है – धन आदि के संग्रह का त्याग'। अपरिग्रही व्यक्ति संयमी होता है। सारी इन्द्रियाँ उसके बस में रहती हैं। कीमती वस्तुओं को वह विष से भी भयावह मानकर उनसे दूर रहना पसन्द करता है। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (२६)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

सातपुकुर

यहाँ सातपुकुर उद्यान के विषय में कुछ लिखना अप्रासंगिक नहीं होगा । पचास-साठ वर्षों पूर्व – अजायबघर (Indian Museum) तथा अलीपुर के चिड़ियाघर के समान ही सातपुकुर का उद्यान जनता की, विशेषकर बच्चों की अभिरुचि तथा आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। शनिवार के दिन स्कूल की छुट्टी हो जाने के बाद वे लोग प्राय: सातपुकुर के उस उद्यान में जाकर आमोद-प्रमोद किया करते थे।

विख्यात मल्लिक वंश के श्याम मल्लिक उस सातपुकुर उद्यान के मालिक थे। उस उद्यान में सात तालाब थे और नहर काटकर उन सातों को एक-दूसरे से जोड़ दिया गया था, इसीलिये उसका नाम 'सातपुकुर-उद्यान' पड़ा था। उन नहरों के ऊपर सुन्दर ईंट के पुल भी बने हुए थे। हिन्दीभाषी लोग उसे 'सात तालाब का बगीचा' कहा करते थे। हमने देखा है – वहाँ के चिड़ियाखाने में एक गहरे काले रंग का बाघ था। बच्चे उसके पिंजरे के सामने जाकर तरह-तरह की मुखभंगिमा दिखाते या चिल्लाते, परन्तु बाघ चुपचाप एक कोने में बैठा रहता। परन्तु पिंजरे की छड़ों पर हाथ रखते ही बाघ भयंकर मुखमुद्रा बनाये हुए एक ही छलाँग में वहाँ आकर गुर्राने लगता। सातपुकुर के उद्यान में एक गैंडा भी था। उसके चारों ओर, सीने की ऊँचाई तक का एक घेरा बना हुआ था। उस चहारदीवारी के बीच एक छोटा-सा पोखरा था। चहारदीवारी के पास जाने पर गैंडा निकट आता और हमारे हाथों से घास खाता। इसके अतिरिक्त वहाँ लकड़बग्घा आदि अनेक पशु तथा पक्षी रखे हुए थे।

बाबू लोगों का अनुमति-पत्र हो, तो बैठकखाना भी खोलकर दिखाया जाता था।

सातपुकुर के उद्यान में और भी एक मजे की चीज थी – गोरखधन्धा; ऐसी हर तरह की पहेलियाँ गोरखनाथ की ही सृष्टि हैं। मैंने अनेक गोरखपन्थी साधुओं के पास लोहे के बने हुए गोरखधन्धे देखे हैं। वह एक तरह की बड़ी जटिल पहेली (puzzle) या भूलभुलैया है, जिसे बोलचाल की भाषा में गोरखधन्धा (labyrinth) कहते हैं। कलकत्ते के आसपास यह अन्यत्र कहीं भी नहीं था। गोरखधन्धा खूब मजबूत मेहदी की बाड़ से बना हुआ था। उसके ठीक बीच में खड़े होने के लिये एक गुम्बजयुक्त 'छत्री' थी। एक बार उसके भीतर घुस जाने पर, दो-तीन घण्टे के पहले निकला नहीं जा सकता था। बहुत-से बच्चे, उस गुम्बजनुमा छत्री की ओर जाने का प्रयास करते हुए बड़ी देर तक घुमते-फिरते रहते, परन्तु गुम्बज तक पहुँच नहीं पाते। उस बेड़े के ऊपर से जाने का भी कोई सहज उपाय नहीं था। अत: लोग उसके भीतर घुसने के बाद, बाहर आने में असमर्थ होकर बड़ी घबराहट का अनुभव करते थे।

सातपुकुर के उद्यान में जाकर मैंने मालियों से पूछताछ की और नागेश्वर चम्पा के वृक्ष के पास भी जाकर देख लिया कि उनमें तब भी कलियाँ नहीं आयी थीं। मालियों ने बताया कि सत्रह-अठारह दिनों बाद आने पर फूल मिल सकेंगे।

मैंने सोचा – फूल लिये बिना मठ नहीं लौटूँगा। इसी दौरान मैं बारासात अंचल के कुछ गाँवों में घूमकर ग्रामीण लोगों की अवस्था देखने लगा। इन सतरह दिनों के दौरान मैं जितने भी गाँवों में गया था, वहाँ देखा कि वे आम, जामुन, कटहल, नारियल आदि फलों के वृक्षों और कँटीली झाड़ियों से परिपूर्ण हैं। मैंने यह भी देखा कि वहाँ पेय जल के तालाब भी विभिन्न प्रकार के जलकुम्भियों तथा खर-पतवार से भरे हुए हैं। गाँव-गाँव में इसी तरह के असंख्य पोखरे तथा गड्ढे विद्यमान हैं। उस अंचल के ग्वाले प्रतिदिन इन्हीं का पानी मिलाकर सैकड़ों मन दूध कलकत्ते के बाजारों में ले आते

हैं। इन कुछ दिनों के भ्रमण के दौरान मैंने गाँव-गाँव में स्वास्थ्य-रक्षा के सहज उपायों का प्रचार किया था।

अठारहवें दिन सातपुकुर के उद्यान में आकर देखा कि सुन्दर-सुगन्धित पुष्पों के भार से झुका हुआ नागेश्वर चम्पा का वृक्ष भौरों के मृदु-मन्द गुंजन से मुखरित हो उठा है। इस पर मेरे आनन्द की सीमा न रही। सोचने लगा कि कब मैं इन पुष्पों की अंजलि ठाकुरजी के चरण-कमलों में अर्पित करके धन्य हो सकूँगा! उसी समय वहाँ एक माली आया और मुझे देखते ही आनन्दपूर्वक बोल उठा, "अरे, आप आ गये! ठीक समय पर ही आये हैं! दो-एक दिन की भी देरी होती, तो फूल झड़ जाते।" इतना कहकर उसने केले के एक बड़े पत्ते का ठोंगा बनाया और उसमें बहुत-से नागेश्वर चम्पा के फूल भरकर मेरे हाथों में दे दिये। मैं भी उन्हें सिर पर रखकर आनन्दपूर्वक मठ लौटा। एक पखवारे से अधिक के मेरे इस अज्ञातवास की कथा सुनकर और बहुत-सारे फूल पाकर रामकृष्णानन्द बड़े ही विस्मित और आनन्दित हुए।

हालीशहर

स्वर्गीय गोलोक शिरोमणि महाशय के पुत्रों ने बारम्बार बुलावा भेजा और स्वामी रामकृष्णानन्द ने भी एक बार मुझसे हालीशहर तक घूम आने को कहा था। मैं वहाँ गया और कुछ दिन शिरोमणि महाशय के घर में ठहरा। महामाया की सन्तान सिद्ध रामप्रसाद के साधना-पीठ का दर्शन करने की भी तीव्र आकांक्षा थी। शिरोमणि महाशय के पुत्र-पुत्रियों ने मुझे देखकर बड़ा हर्ष व्यक्त किया। उन्होंने मेरा आदर-सत्कार करने में कुछ उठा नहीं रखा।

बाद में मैंने रामप्रसाद के साधना-पीठ पर जाकर देखा – भाव के आवेग में, वे गाब के जिस वृक्ष से पद्मफूल लाकर जगदम्बा के चरणों में चढ़ाया करते थे, वह तब भी उनकी जीर्ण-शीर्ण कुटिया के पास ही विद्यमान था। तब भी वहाँ प्रतिवर्ष कालीपूजा हुआ करती थी।

मकर-संक्रान्ति के दिन त्रिवेणी में स्नान करके मैं मठ लौट आया।

महोत्सव

आलमबाजार में ठाकुर की तिथिपूजा के दिन रामदादा (रामचन्द्र दत्त), मास्टर महाशय, मनोमोहन बाबू आदि प्राय: सभी गृहस्थ भक्त आये थे।

दक्षिणेश्वर में महोत्सव के दो-तीन दिन पूर्व – सुबोधानन्द और मैं कलकत्ते के इडेन गार्डेन के मुख्य इंजीनियर रायबहादुर प्रसन्न कुमार वन्द्योपाध्याय को निमंत्रण देने और उत्सव के लिये फूल लाने उनके एड़ियादह में स्थित मकान पर गये। उनके घर के सामने पहुँचते ही हमारी उनसे भेंट हो गयी। वहाँ खड़े-खड़े ही हमारी बात चल रही थी। वे रोते हुए बोले, "अहा, आप लोग कितने भाग्यवान हैं! वे मेरे घर के इतने पास तक आये थे, तो भी मैं उन्हें पहचान नहीं सका।"

ठीक उसी समय, शरीर पर नामावली लगाये कुछ स्थानीय ब्राह्मण उनके मकान की ओर चले आ रहे थे। उन लोगों को देखते ही वे नाराज होकर बोल उठे, "इन लोगों को तुषानल में दग्ध कर देना चाहिये।"

हम सब लोग उनकी सारी बातें नहीं सुन सके थे, तो भी उनका आन्तरिक भाव समझ गये। ये लोग ही तरह-तरह की बातें कहकर प्रसन्न बाबू को ठाकुर के पास जाने से रोक देते थे।

उस बार के महोत्सव में प्रसाद किस तरह का होगा – इसी को लेकर चर्चा आरम्भ हुई। स्वामी ब्रह्मानन्द और योगानन्द उस समय बलराम बाबू के घर में थे। वहाँ प्रियनाथ मुखोपाध्याय आदि महोत्सव के प्रमुख उद्यमियों ने प्रस्ताव रखा कि दरिद्र-नारायणों के लिये बड़ी मात्रा में अरहर के दाल की और भद्र लोगों के लिए पाँच मन भुने हुए सोना-मूंग के दाल और बाँकतुलसी चावल की विशेष खिचड़ी बने। इसे सुनकर हम सभी मठवासी इस व्यवस्था को निरस्त करने के प्रयास में लग गये। ठाकुर के प्रसाद में सबका समान अधिकार होना चाहिये। ठाकुर के दरबार में छोटे-बड़े, सामान्य-भद्र जैसा भेदभाव नहीं होना चाहिये। इसीलिये इस व्यवस्था में बदलाव हेतु हम लोग स्वामी ब्रह्मानन्द के पास गये। हम लोग जनतांत्रिक थे। किसी प्रकार का सामाजिक वैषम्य हमें सहन नहीं होता था।

बलराम बाबू के घर जाकर मैंने स्वामी ब्रह्मानन्द से कहा, "राजा, सुना है कि तुमने दो प्रकार के प्रसाद की व्यवस्था का अनुमोदन किया है!"

उन्होंने कहा – "कल गृहस्थ-भक्त इसी तरह की बातें कर रहे थे, परन्तु मेरा उसमें कोई मतामत नहीं था। अब तुम लोगों के प्रस्ताव के अनुसार सबके लिए भुनी हुई मूंगदाल वाले खिचड़ी की ही व्यवस्था होगी।" **(क्रमशः)**

चक्रधारी महारथी अभिमन्यु

स्वामी पद्माक्षानन्द

महाभारत के युद्ध में अनेक रथी-महारथी, धनुर्धारी, गदाधारी, वीर योद्धाओं ने अपने-अपने शौर्यवीर्य, रण-कौशल इत्यादि से सबको चकित कर दिया था। परन्तु अभिमन्यु ने जो पराक्रम दिखलाया; उसकी कोई तुलना नहीं हो सकती। अभिमन्यु वीरता, पौरुष, पराक्रम, शौर्य, तेज, प्रताप आदि अनेक गुणों का अथाह सागर था। महाभारत युद्ध का चमकता हुआ एक सितारा था वीर-अभिमन्यु। अभिमन्यु सुभद्रा और अर्जुन की सन्तान था। सुभद्रा भगवान श्रीकृष्ण की बहन थी। अभिमन्यु का जन्म द्वारका में अपने मामा श्रीकृष्ण के यहाँ हुआ था। श्रीकृष्ण के संरक्षण में उसने अस्त्र-शस्त्र विद्या का अभ्यास किया था। और अपने बड़े मामा बलराम से उसने गदायुद्ध की शिक्षा प्राप्त की थी। बाद में अर्जुन ने अपने पुत्र को धनुष विद्या में कुशल बनाया। अभिमन्यु सदैव अपने बड़ों का आदर करता और श्रीकृष्ण की प्रत्येक आज्ञा का पालन करता था।

महाभारत युद्ध के १३वें दिन पाण्डव पक्ष में सभी हताश, उदास और निराश हैं क्योंकि द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह की रचना की है। पाण्डव पक्ष में चक्रव्यूह भेदने की विधि किसी को भी मालूम नहीं हैं। अर्जुन को यह रहस्य मालूम है, किन्तु संशप्तकों से युद्ध करने के लिए अर्जुन कुरुक्षेत्र के मैदान से बहुत दूर चले गये हैं। सभी यह मान बैठे थे कि अब तो युद्ध में हार निश्चित है। तभी अभिमन्यु ने कहा कि वह चक्रव्यूह भेदने की विधि जानता है। उनलोगों ने अभिमन्यु से पूछा कि तुम इतने विकट चक्रव्यूह भेदने का रहस्य कैसे जानते हो? अभिमन्यु ने बताया – जब मैं अपनी माँ के गर्भ में था, तब एक दिन पिताजी माँ को चक्रव्यूह भेदने की विधि बतला रहे थे। एक-एक करके छह द्वारों को भेदने की विधि बता दिया था। इसी बीच माँ को नींद आ गयी और पिताजी ने सातवें द्वार को भेदकर बाहर आने की विधि माँ को नहीं बतलायी। इस प्रकार मुझे छह द्वारों को भेदने की जानकारी है, परन्तु सातवें द्वार को भेदकर बाहर आने की जानकारी मुझे नहीं है। तब उसके चाचा भीमसेन ने कहा कि सातवें द्वार को वह अपने गदे की प्रहार से तोड़ देंगे। युधिष्ठिर अभिमन्यु को चक्रव्यूह तोड़ने के लिए नहीं जाने देना चाहते थे। लेकिन उनके पास इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं था।

महाभारत का युद्ध १८ दिन तक हुआ था। इस युद्ध का १३वाँ दिन, १६ वर्ष के बालक अभिमन्यु के नाम रहा।

महाभारत का तेरहवें दिन का युद्ध आरम्भ हुआ। कौरव पक्ष के सेनानायक द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह भेदने के लिए पाण्डव पक्ष को चुनौती दी। चक्रव्यूह या पद्मव्यूह हिन्दू युद्ध शास्त्रों में वर्णित अनेक व्यूहों में से एक व्यूह (सैन्य-सरंचना) है। चक्रव्यूह एक बहु-स्तरीय रक्षात्मक सैन्य-संरचना होता है। यह ऊपर से देखने में चक्र या पद्म (कमल) के सदृश प्रतीत होता है। जिसके कारण इसे चक्रव्यूह या पद्मव्यूह कहा जाता है। तथा इसके प्रत्येक द्वार पर एक महान योद्धा द्वार-रक्षक के रूप में तैनात रहता है।

द्रोणाचार्य के चक्रव्यूह को तोड़ने के लिए पाण्डव सेना अभिमन्यु के नेतृत्व में आगे बढ़ने लगी। सबसे आगे अभिमन्यु था और उसके पीछे पाण्डव सेना थी। चक्रव्यूह के प्रथम द्वार पर सिन्धु नरेश जयद्रथ था। अभिमन्यु अपनी बाण-वर्षा से चक्रव्यूह के प्रथम द्वार को भेदकर चक्रव्यूह के भीतर प्रवेश कर गया। अभिमन्यु के भीतर प्रवेश करते ही जयद्रथ ने चक्रव्यूह के प्रवेश मार्ग को अवरुद्ध कर दिया। और भीमसेन आदि पाण्डवों को चक्रव्यूह के भीतर प्रवेश करने नहीं दिया।

वीर बालक अभिमन्यु अपने रथ पर सवार शत्रुओं के व्यूह में प्रवेश कर गया था। उसपर चारों ओर से अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा हो रही थी। लेकिन निर्भीक अभिमन्यु अपने धनुष से पानी की झड़ी के समान चारों ओर बाणों की वर्षा करता जा रहा था। कौरव सेना के हाथी, घोड़े और सैनिक कट-कटकर गिरने लगे। रथ चूर-चूर होने लगे। चारों ओर हाहाकार मच गया। सैनिक इधर-उधर भागने लगे। द्रोणाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा आदि बड़े-बड़े महारथी सामने आये, किन्तु सोलह साल के बालक अभिमन्यु की गति को कोई भी रोक नहीं सका। उसके आगे सबको मुख की खानी पड़ी। अभिमन्यु एक-एक करते हुए चक्रव्यूह के छह द्वारों के द्वाररक्षकों को परास्त करते हुए आगे बढ़ता

शेष भाग पृष्ठ ७७ पर

भक्ति से राधारानी पुत्री बनीं

ब्रह्मलीन स्वामी राजेश्वरानन्द जी महाराज

अमर आश्रम, पँचोखरा, झाँसी

राजराजेश्वरी श्रीराधिकाजी की प्राकट्य भूमि दिव्य धाम बरसाने में एक भक्त वैश्य रहा करते थे। प्रभु-कृपा से इनके जीवन में किसी प्रकार का अर्थाभाव नहीं था। भव्य–भवन, बाजार में आलीशान दुकान, पूर्वजों से प्राप्त प्रचुर सम्पत्ति सभी कुछ था। सन्तान के रूप में प्रभु ने इन्हें तीन सुयोग्य बेटे दिये थे। तीनों का विवाह हो चुका था। उनके अनुरूप सुशील तीन बहुएँ भी घर में थीं। गाँव में सम्मान था। लोग इन्हें श्रद्धा से 'सेठजी' कहकर सम्बोधित करते थे; पर इनकी कोई पुत्री नहीं थी। यही अभाव इन्हें दिन-रात अखरता था। एक परम भागवत सन्त ने इनका दुख जानकर इन्हें सुझाव दिया कि तुम श्रीराधिकाजी को ही अपनी बेटी मान लो। सन्त जी ने इन्हें समझाते हुए कहा –

सुनहु सेठ तुमको मिल्यो बरषाने को बास।
ऐहि नाते राधा सुता, काहे रहत उदास।।

करुणामयी श्रीवृषभानु-दुलारी जी के अनुग्रह और भगवद्भक्त सन्त के आशीर्वाद, दोनों ने मिलकर सेठ का जीवन ही बदल दिया।

परम वैष्णव वृत्ति तें, ब्रजवासी यह भक्त।
मन मनि चित तें रहत नित राधा पद अनुरक्त।।

सेठजी की उदासी गायब हो गयी। सदा प्रसन्न रहते। कोई परिचय पूछता, तो अत्यन्त आनन्दित होते हुए उत्तर देते–

तीन बहू बेटे हैं घर में सुख सुविधा है पूरी।
सम्पत्ति भरी भवन में रहती नहीं कोई मजबूरी।।
कृष्ण कृपा से जीवन पथ में कभी न आती बाधा।
मैं बड़भागी पिता हूँ मेरी बेटी है श्रीराधा।।

सेठजी ने अपने विश्राम कक्ष में भी राधा बेटी का अत्यन्त मनोरम चित्र सजाकर रख लिया था। प्राय: निर्निमेष नयनों से निहारते हुए नेह-नीर बहाते रहते। दुकान जाते तो प्रणाम करके और आज्ञा लेकर जाते। घर वापस आते तो पहले प्रणाम करते। भोजन भी पहले बेटी को कराने के बाद करते। एक दिन एक अनोखी घटना घटी। हमेशा की तरह उस दिन चूड़ी पहनानेवाली घर में आयी। सेठजी और उनके तीनों बेटे उस समय दुकान पर थे। मनिहारिन घर में तीनों बहुओं को चूड़ी पहनाने लगी, तभी प्रभु की आह्लादिनी शक्ति करुणामूर्ति श्रीराधिकाजी को लगा कि मेरे पिता के घर में ही चूड़ी पहनानेवाली आयी है, क्यों न मैं भी वहीं जाकर आज चूड़ी पहन लूँ! ऐसा विचार करते ही श्रीराधिकाजी अपने पिता सेठजी के घर में प्रगट हो गयीं, पर उनका दर्शन केवल चूड़ी पहनानेवाली को हुआ। उसने तीनों बहुओं के साथ श्रीराधिकाजी को भी चूड़ी पहनाई। मनिहारिन को हमेशा चूड़ी पहनाने के पैसे दुकान से मिलते थे। अत: वह बाजार में सेठजी के पास गयी और अपनी मजदूरी माँगी। सेठजी ने तीन बहुओं के हिसाब से तीन को चूड़ी पहनाने की मजदूरी दे दी; पर चूड़ी पहनानेवाली बोली कि मैंने चार को चूड़ी पहनाई है, मुझे पैसे और मिलने चाहिए। सेठजी ने कहा कि हमारे घर में चौथा कोई चूड़ी पहननेवाला नहीं है, क्योंकि बहुएँ तो तीन ही हैं और मेरी पत्नी का देहावसान तो बहुत पहले हो चुका है। अत: चौथी चूड़ी पहननेवाली कोई देवी है ही नहीं। तुम झूठ बोल रही हो। मनिहारिन कहती रही कि आपके घर में कोई चौथी चूड़ी पहननेवाली भले हो न हो, पर मैंने तो चूड़ी चार को पहनाई है। मैं भला कैसे मानूँ? बड़ा विवाद हुआ, किन्तु सेठजी ने तीन की ही चूड़ी पहनाने की मजदूरी मनिहारिन को दी। बेचारी उदास अपने घर चली गयी। हमेशा की तरह सेठजी भी रात्रि को दुकान से घर आये, श्रीराधिकाजी को प्रणाम किया। नित्य की भाँति बेटी राधा को भोजन कराने के बाद प्रसाद पाया और श्रीराधा नाम स्मरण करते हुए विश्राम करने लगे। तभी उन्हें स्वप्न में श्रीराधिकाजी का दर्शन हुआ। वे अत्यन्त दुखी दिखाई दे रहीं थी। सेठजी ने वात्सल्य भाववश पूछा, "बेटी! तुम क्यों उदास हो? तुम्हारी उदासी का क्या कारण है? श्रीराधिकाजी ने अत्यन्त मार्मिक उलाहना देते हुए उनसे कहा –

सपने में आय वृषभानु की दुलारी बोली,
तनया बनाइ तात नात न निभायो है।
चूरी पहिरि लीन्हीं मैं जानि पितु गेह काल्हि,
आप मनिहारिन की मोल न चुकायो है।।
तीन बहू याद किन्तु बेटी नहिं याद रही,
कहत श्रीराधिका को हीय भरि आयो है।

ऐसी भयी दूरी कहो कौन मजबूरी हाय,
आज चार चूरी काज मोहि बिसरायो है।।

श्रीसेठजी की नींद टूट गयी। अब तो वे अत्यन्त दुखी होकर रोने लगे। उसी समय रात्रि में ही मनिहारिन के घर पहुँचे और दरवाजे की सांकल बजाई। जैसे ही मनिहारिन ने दरवाजा खोला, सेठजी तुरन्त मनिहारिन के चरणों में गिर पड़े और कहने लगे, ''माँ, मुझे क्षमा कर दो, मुझसे बड़ी भूल हुई।'' मनिहारिन बार-बार कहती सेठजी, उठो मुझे भी तो बताओ, आखिर बात क्या है ? सेठजी बोले –

धनि धनि भाग तेरो मनिहारी।
तेरे से बड़भागी नहीं कोऊ सन्त महन्त पुजारी।।
मैंने मानी सुता किन्तु निज नैनन्ह नाहि निहारी।
चूरी पहिरि गयी तव कर तें श्रीवृषभानु दुलारी।।
बेटी की चूरी पहिराई, लेहु जाऊँ बलिहारी।
जन 'राजेस' जोरि कर विनवत, छमियो चूक हमारी।।

सेठजी की अत्यन्त भाव-विह्वल दशा थी। शरीर रोमांचित और कण्ठ अवरुद्ध था –

जुगल नयन जल तें भरे, मुख तें कढ़ैं न बोल।
मनिहारिन के पाँय परि, लगे चुकावन मोल।।

मनिहारिन भी पुलकित होते हुए अपने मन से कहने लगी –

जब तोहि मिल्यो अमोल धन, अब का मांगत मोल।
रे मन मेरे प्रेम सों राधा राधा बोल।।

मनिहारिन बोली, ''सेठजी! मुझे कुछ भी नहीं चाहिए। दोनों के नेत्र सजल थे, दोनों भाव-विभोर थे, दोनों की रसना से बस एक ही मन्त्र, उच्चारित हो रहा था – 'जय जय श्रीराधे'। ○○○

पृष्ठ ७५ का शेष भाग

गया और सातवें द्वार में प्रवेश कर गया। लेकिन इस द्वार का मर्मस्थल कहाँ पर है, उसे मालूम नहीं था। फिर भी वह युद्ध करता जा रहा था।

अभिमन्यु के पराक्रम से सभी अचम्भित थे। उसके सामने कोई टिक नहीं पा रहा था। वीर अभिमन्यु का अकेला सामना करने में कौरव पक्ष के सभी योद्धा अपने को असमर्थ पा रहे थे। द्रोणाचार्य ने कर्ण से कहा – ''यदि तुम इसे परास्त करना चाहते हो, तो इसके रथ और धनुष को नष्ट कर दो। जब तक इसके हाथ में धनुष रहेगा, तब तक सम्पूर्ण देवता और असुर भी अभिमन्यु को नहीं जीत सकते।'' द्रोणाचार्य की यह बात सुनकर कर्ण ने बड़ी तेजी से अपने बाणों द्वारा अभिमन्यु के धनुष को काट दिया। भोजवंशी कृतवर्मा ने उसके घोड़े मार डाले और कृपाचार्य ने उसके दोनों पार्श्वरक्षकों को मार डाला। छह महारथी – द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण, अश्वत्थामा, बृहद्बल और कृतवर्मा रथ पर सवार थे और अभिमन्यु रथहीन निहत्था था। ये छह निर्दयी महारथी एक रथहीन बालक पर बाणों की बौछार करने लगे। धनुष कट जाने और रथ नष्ट हो जाने पर अभिमन्यु ढाल और तलवार हाथ में लेकर लड़ने लगा। द्रोणाचार्य ने अभिमन्यु के खड्ग काट दिये। कर्ण ने अभिमन्यु के ढाल के टुकड़े-टुकड़े कर डाले।

ढाल और तलवार से वंचित बाणों से क्षत-विक्षत अभिमन्यु ने अपने रथ के चक्र को उठा लिया और युद्ध करने लगा। द्रोणाचार्य आदि ने अपने बाणों से चक्रधर अभिमन्यु के चक्र के टुकड़े कर दिये। अभी भी महारथी अभिमन्यु ने हार नहीं मानी और विशाल गदा हाथ में लेकर युद्ध करने लगा। दु:शासन के पुत्र और अभिमन्यु में भयंकर युद्ध होने लगा। युद्ध करते-करते दोनों पृथ्वी पर गिर पड़े। दु:शासन के पुत्र ने पहले उठते हुए अभिमन्यु के मस्तक पर गदा से प्रहार किया। और इस प्रहार से महापराक्रमी, महासाहसी, महारथी अभिमन्यु वीरगति को प्राप्त हुआ।

अभिमन्यु का विवाह राजा विराट की पुत्री उत्तरा से हुआ था। अभिमन्यु जब वीरगति को प्राप्त हुआ, उस समय उत्तरा गर्भवती थी। अभिमन्यु की मृत्यु के बाद उत्तरा ने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम परीक्षित रखा गया था। पाण्डवों के बाद परीक्षित ने ही उनके कुल को आये बढ़ाया। ये वही परीक्षित हैं, जिनको परमहंस शिरोमणि शुकदेव ने श्रीमद्भागवत कथा सुनायी थी।

वीर अभिमन्यु का जीवन हमें यह शिक्षा देती है कि जीवन में कोई भी विकट समस्या आये, तो हमें उसका सामना वीरता, निर्भयता, पौरुष, साहस, धैर्य, आत्मविश्वास के साथ करना चाहिए तथा कभी भी अपने कर्तव्य से विमुख नहीं होना चाहिए। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (८८)

स्वामी सुहितानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

३०-०३-१९६२

महाराज – स्वप्न और सुषुप्ति में बहुत अन्तर है। स्वप्न में जिन वृत्तियों को हम देखते हैं, वहाँ विचार नहीं रहता है। सुषुप्ति में आवरण को देखते हैं। थिएटर (रंगमंच) में प्रकाश बन्द हो जाने पर अन्धकार देखते हैं। अर्थात् दृश्य हट जाने पर मैं अपने मूल कारण में चला जाता हूँ, किन्तु अज्ञान से आवृत होकर। दृश्य नहीं रहने पर लगता है कि मैं नहीं हूँ। मुझसे ही दृश्य प्रक्षेपित होता है, मेरा दृश्य के साथ तादात्म्य हो जाता है और दृश्य को ही 'मैं' बोध करने लगता हूँ।

अनेक विद्वानों ने सुषुप्ति को समाधि की अवस्था कहा है। क्योंकि सुषुप्ति में जागतिक सुख-दुख, बाह्य आघात का लय तो होता है, किन्तु वह नकारात्मक पक्ष है, कोई सकारात्मक परमानन्द नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त, उसके ऊपर मेरा नियन्त्रण नहीं रहता, स्वत: सुषुप्ति आएगी और समय होते ही समाप्त हो जाएगी।

मैंने अनेक लोगों से पूछा है – मान लो कि सोए और फिर नहीं उठे, इसमें हानि क्या है? मैं भी पहले कहता था – मैं सो गया और मान लो नहीं उठा। राजयोग में सुषुप्ति का ध्यान है। सुषुप्ति-ध्यान का तात्पर्य है, उसमें दो बातें हो सकती हैं – १. सुषुप्ति के समय जैसे सुख-दुख से रक्षा होती है, वैसी ही एक अवस्था का चिन्तन! २. सुषुप्ति के ठीक पहले मन में जो एक सहज आराम बोध होता है, उस बोध पर मन को स्थिर करना।

गीता में जो अनेक प्रकार के यज्ञों की बात बताई गयी है, उसका उद्देश्य है – विभिन्न उपायों द्वारा मन को संसार से ऊपर उठाकर एक केन्द्राभिमुखी करना, थोड़ा आत्मपरक करना। द्रव्य यज्ञ करते-करते धीरे-धीरे चित्त शुद्ध होगा, फिर पाँच-सात जन्मों के बाद ईश्वर में मन लगेगा। यह कोई कम बात नही है। हम लोग साधारणतया एक जन्म में ही फल पाना चाहते हैं।

प्रश्न – यहाँ आरती के पश्चात् 'जय गुरु महाराजजी की जय' के स्थान पर 'जय भगवान श्रीरामकृष्णदेव की जय' क्यों बोला जाता है?

उत्तर – बाबा (अखण्डानन्दजी) ने 'जय गुरु महाराजजी की जय' के स्थान पर 'भगवान श्रीरामकृष्ण देव की जय' प्रारम्भ किया था, क्योंकि उन्होंने देखा था कि सभी अपने-अपने गुरु की जय बोलते हैं।

मैंने एक व्यक्ति को हाथ के इशारे से चाँद दिखाया, वह देख ही नहीं पाता था, केवल मेरे हाथ की ओर देखता था। मैं किसी तरह भी उसकी दृष्टि को चाँद की ओर नहीं फेर सका। मैंने सोचा कि चलो यह भी अच्छा है, कई दिनों तक हाथ की ओर देखते-देखते सम्भवत: एक दिन वह चाँद देख पाएगा, मन अनेक चीजों को छोड़कर इस हाथ में आया है!

२-४-१९६२

महाराज – जीवन का क्या तात्पर्य समझते हो? जीवन का तात्पर्य है – मनुष्य का तन, मन, प्राण और बुद्धि को नर्तकी के नृत्य की तरह नचाना। देह को नचा-नचाकर चलता-फिरता हूँ, कितनी प्रकार से उसे सजा-सँवारकर,

पैदल चलकर तीर्थ-भ्रमण करता हूँ। प्राण-शक्ति को लेकर मार-काट, खेलकूद, उत्तेजना, अवसाद, कितना कुछ करता हूँ! मन को लेकर कितने तरह की भाग-दौड़ करता हूँ, उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है! अच्छे-बुरे दृश्य देखता हूँ, सोचता हूँ, चर्चा करता हूँ, मैं भाषण देकर मन को नचाता हूँ और उसका आनन्द लेता हूँ! बुद्धि का व्यायाम करके दूसरे को छोटा समझकर कितना आनन्द लेता हूँ!

दूसरे के बारे में खूब सजा-सँवारकर कुछ कहने से कोई-कोई अत्यन्त प्रसन्नता का अनुभव करते हैं और जो साधक हैं, वे भगवान का रूप-लीला तत्त्व लेकर परमानन्द में रहते हैं।

मायावती में सबने विरजानन्द स्वामी से कोई कहानी सुनाने का आग्रह किया। वे बोले, "पहले जाकर ध्यान-जप करो, उसके बाद।" एक दिन कथा-प्रसंग बहुत जमा हुआ था। भोजन का घंटा बजने के बाद भी चलता रहा। उन्होंने कहा, "तुम लोग मुँह मीठा करके जाओ।" ऐसा कहकर सभी को एक-एक टॉफी दी। लोगों ने जानना चाहा कि उन्होंने कैसे जाना कि आज प्रसंग इतना अच्छा जमेगा? उन्होंने कहा, "मैं स्वामीजी का बच्चा हूँ – जादू जानता हूँ।"

महापुरुष महाराज को मैंने सर्वप्रथम सियालदह रेलवे स्टेशन पर देखा था। वहाँ कितने गेरुआधारी संन्यासियों को देखा था। इसके पहले तो देखा नहीं था, पहचानता भी नहीं था। इस साधु को सबसे ऊँचा देखकर लगा कि ये कोई हैं। उन्हें प्रणाम करके मैंने कहा, – थोड़ा आलिंगन करूँगा। वे मेरी पीठ पर हाथ रखकर बोले – "कौन है रे?"

१३-४-१९६२

प्रश्न – बाबा (स्वामी अखण्डानन्द को सारगाछी में सभी लोग 'बाबा' कहकर पुकारते थे) ठाकुर के संन्यासी-शिष्य थे, इसके अलावा वे रामकृष्ण मठ और मिशन के महाध्यक्ष थे। उसके बाद जब आप सारगाछी में आए, तब उस समय का कुछ अनुभव बताइए?

महाराज – सारगाछी से मेरी सम्बन्धित बातें कहने से एक सुन्दर उपन्यास बन सकता है। जब पहली बार आया, तब समझ ही नहीं पाता था कि यह क्या है! ठाकुर-मन्दिर के पास एक कमरा था, उसी कमरे में विभूति, मणि आदि रहते और खड़ाऊँ पहनकर चलते। बाबा कहते 'पैनडिमोनियम'। बाबा का आदेश था – पेड़ों को नहीं काटना है। रास्ते के किनारे केलिकदम के पेड़ की डाल लटक रही है, गाड़ी जा नहीं पा रही है। किन्तु बाबा के शिष्यों के डर से पेड़ों को काटना सम्भव नहीं था। अन्त में क्या किया – बहरमपुर के निशीथ बाबू ने कुबेर आदि सबको खड़ा करके मेरे पक्ष में एक भाषण दिलवाया, तब मजदूर लगाकर पेड़ कटवाया। एक व्यक्ति ने ठाकुर से सम्बन्धित एक भी पुस्तक नहीं पढ़ी थी। मेरे पास रहकर सर्वप्रथम उसने गुरुदास बर्मन पढ़ी।

बाबा के सभी शिष्यों ने सर्वसम्मति से तय किया कि उनकी तिथि-पूजा करेंगे। मैंने कहा कि बाबा संन्यासी की तिथि-पूजा का आयोजन करने के घोर विरोधी थे। जीवित रहते हुए उन्होंने आप लोगों को ऐसा नहीं करने दिया और उनके चले जाते ही आप लोग ऐसा करेंगे? एक भक्त ने रामकृष्णानन्द स्वामी की जन्मतिथि पर उनकी पुस्तक का पाठ किया था। यह सूचना पाकर बाबा ने उन्हें बुलाकर कहा – "आज नहीं कल पढ़ना।" ऐसी स्थिति में चलना तो कठिन था। सबको धीरे-धीरे हटाने लगा। मैंने कहा – "तुम लोग साधु हो। तुम लोगों का इस प्रकार एक स्थान पर रहना ठीक नहीं रहेगा। हमलोगों के कितने ही प्रकार के आश्रम हैं। उन्हें देखना-पहचानना होगा न?"

बाबा के भक्तों ने इस विकट संकट को देखा, तो उन लोगों ने मठ में शिकायत कर दी – "प्रेमेशानन्द अपने लेफ्टिनेन्ट कुबेर के साथ बाबा के आदर्शवाद के विपरीत चल रहे हैं।" उसी पत्र को मठ ने पुन: मेरे पास ही भेज दिया।

एक व्यक्ति तो कौन जाने कहाँ क्या करता था! पाँच दिन बाहर रहता, दो दिन आश्रम में। सभी मेरे पास शिकायत करते! मैंने कहा – पकने दो, स्वयं ही गिर जाएगा। एक दिन रास्ते में उसके साथ भेंट हुई। मैंने पूछा – कैसे हो? वह मुख नीचे करके बोला – समझ रहा हूँ, मेरा यहाँ और अधिक रहना उचित नहीं होगा। तब वह अपने आप ही चला गया।

मेरे ऊपर बाबा का आशीर्वाद था, इसीलिए मुझे वे यहाँ लाए थे, अन्यथा सम्भवत: यह मठ से पृथक् हो जाता।**(क्रमशः)**

ढोलक या तबले के भिन्न-भिन्न शब्दों के बोल मुख से निकालना सहज है; किन्तु उसे बजाना कठिन। इसी प्रकार, धर्म की बातें कहना तो सहज है किन्तु कार्य रूप में परिणत करना कठिन है।

– श्रीरामकृष्ण देव

दृग्-दृश्य-विवेकः (९)

(यह ४६ श्लोकों का 'दृग्-दृश्य-विवेक' नामक प्रकरण ग्रन्थ 'वाक्य-सुधा' नाम से भी परिचित है। इसमें मुख्यत: 'दृश्य' के रूप में जीव-जगत् की और 'द्रष्टा' के रूप में 'आत्मा' या 'ब्रह्म' पर; और साथ ही 'सविकल्प' तथा 'निर्विकल्प' समाधियों पर भी चर्चा की गयी है। ग्रन्थ छोटा, परन्तु तत्त्वबोध की दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। ज्ञातव्य है कि इसके १३वें से ३१वें श्लोकों के बीच के आनेवाले १६ श्लोक 'सरस्वती-रहस्य-उपनिषद्' में भी प्राप्त होते हैं। मूल संस्कृत से इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

जीव-ब्रह्म की अभिन्नता

सीमाबद्ध जीव के लिये के लिये असीम शुद्ध ब्रह्म के साथ अभिन्न होना कैसे सम्भव है, अब यही बताते हैं –

अवच्छेदः कल्पितः स्यादवच्छेद्यं तु वास्तवम् ।
तस्मिन् जीवत्वमारोपाद्ब्रह्मत्वं तु स्वभावतः ॥३३॥

अन्वयार्थ – (जीव की) **अवच्छेदः** सीमा **कल्पितः** असत्य **स्यात्** है, तु परन्तु **अवच्छेद्यं** सीमित प्रतीत होनेवाला तत्त्व (ब्रह्म) **वास्तवं** सत्य (है); **तस्मिन्** उस (ब्रह्म) में **आरोपात्** आरोपित होने के कारण **जीवत्वं** (**स्यात्**) जीवत्व प्रतीत होता है, **तु** परन्तु **स्वभावतः** स्वभाव से (ही उसे) **ब्रह्मत्वं** ब्रह्मत्व प्राप्त है।

भावार्थ – (जीव की) सीमा असत्य है, परन्तु सीमित प्रतीत होनेवाला (ब्रह्मतत्त्व) सत्य (है); उस (ब्रह्म) में आरोपित होने के कारण जीवत्व प्रतीत होता है, परन्तु स्वभाव से वह ब्रह्म ही है।

अवच्छेदवाद का सिद्धान्त

अब अवच्छेदवाद के सिद्धान्त द्वारा जीव-ब्रह्म के तादात्म्य को समझाया जा रहा है –

अवच्छिन्नस्य जीवस्य पूर्णेन ब्रह्मणैकताम् ।
तत्त्वमस्यादिवाक्यानि जगुर्नेतरजीवयोः ॥३४॥

अन्वयार्थ – **तत्त्वमस्यादि-वाक्यानि** 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों में **अवच्छिन्नस्य जीवस्य** सीमाबद्ध जीव की **पूर्णेन ब्रह्मणा** पूर्ण ब्रह्म के साथ **एकतां** एकता **जगुः** बताई गयी है, **न** न कि **इतर-जीवयोः** अन्य (दो तरह के) जीवों के साथ।

भावार्थ – 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों में, सीमाबद्ध जीव की पूर्ण ब्रह्म के साथ एकता बताई गयी है, न कि अन्य दो तरह के जीवों के साथ।

आवरण तथा विक्षेप शक्तियाँ

ब्रह्म के ऊपर आरोपित सीमाबद्धता के कारण, जीव जैसा प्रतिभात होता है, अब वही बताया जा रहा है –

ब्रह्मण्यवस्थिता माया विक्षेपावृतिरूपिणी ।
आवृत्याखण्डतां तस्मिन् जगज्जीवौ प्रकल्पयेत् ॥३५॥

अन्वयार्थ – **विक्षेप-आवृति-रूपिणी** आवरण तथा विक्षेप शक्तियों का रूप धारण करनेवाली **माया** माया, **ब्रह्मणि** ब्रह्म में **अवस्थिता** स्थित रहकर, **तस्मिन्** उस (ब्रह्म) की **अखण्डतां** अखण्ड स्वरूपता को **आवृत्य** आच्छादित करके **जगज्जीवौ** जगत् तथा जीव (दोनों) की **प्रकल्पयेत्** सृष्टि करती है।

भावार्थ – 'आवरण' तथा 'विक्षेप' नामक शक्तियों का रूप धारण करनेवाली माया – ब्रह्म में स्थित रहकर, उस (ब्रह्म) के अखण्ड स्वरूप को आच्छादित करके, जगत् तथा जीव (दोनों) की सृष्टि करती है।

माया का स्वरूप

जीव और जगत् का स्वरूप क्या है, आगे इसी का उत्तर दिया जा रहा है –

जीवो धीस्थश्चिदाभासो भवेद्भोक्ता हि कर्मकृत् ।
भोग्यरूपमिदं सर्वं जगत् स्याद्भूतभौतिकम् ॥३६॥

अन्वयार्थ – **धीस्थः** बुद्धि में स्थित **चिदाभासः** चिदाभास (जीव) **कर्मकृत्** कर्मों का कर्ता (**च**) और **भोक्ता** (फलों का) भोक्ता है, (**तस्मात्**) इसीलिये **जीवः भवेत्** जीव कहलाता है। **भूतभौतिकं** (**भूतं**) पंचभूतों तथा (**भौतिकम्**) उनसे निर्मित (देव-मानव आदि) – **इदं सर्वं** यह सारा **जगत्** संसार **भोग्यरूपं** भोग का साधन **स्यात्** बन जाता है।

भावार्थ – बुद्धि में स्थित चिदाभास (जीव) कर्मों का कर्ता और (फलों का) भोक्ता है, अत: जीव कहलाता है; पंचभूतों तथा उनसे निर्मित (देव-मानव आदि) – यह सारा संसार (उसके लिये) भोग का साधन बन जाता है।

गीता तत्त्व चिन्तन (२)

नवम अध्याय

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के संस्थापक सचिव थे। उनका 'गीतातत्त्व चिन्तन' भाग-१ और २, अध्याय १ से ६वें तक पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुका है और लोकप्रिय है। ८वाँ अध्याय 'विवेक ज्योति' के सितम्बर,२०१६ से नवम्बर, २०१७ अंक तक प्रकाशित हुआ था। अब प्रस्तुत है ९वाँ अध्याय, जिसका सम्पादन ब्रह्मलीन स्वामी निखिलात्मानन्द जी ने किया है – सं.)

ज्ञान का अधिकारी कौन?

ईर्ष्यारहित व्यक्ति ही ज्ञान का सच्चा अधिकारी

श्रीभगवानुवाच – भगवान श्रीकृष्ण कह रहे हैं –

इदं तु ते गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।।१।।

ते (तुझ) अनसूयवे (ईर्ष्यारहित भक्त के लिए) इदम् (इस) गुह्यतमम् (परम गोपनीय) ज्ञानम् (ज्ञान को) विज्ञानसहितम् (विज्ञानसहित) प्रवक्ष्यामि (कहूँगा) यत् (जिसको) ज्ञात्वा (जानकर तू) अशुभात् (अशुभ से) मोक्ष्यसे (मुक्त हो जाएगा)।

''तुझ ईर्ष्यारहित भक्त के लिए इस परम गोपनीय ज्ञान को मैं विज्ञानसहित कहूँगा जिसको जानकर तू अशुभ से मुक्त हो जाएगा।''

ऐसी ही बात उन्होंने सातवें अध्याय में भी कही थी कि मैं तुझे ज्ञान-विज्ञान के सहित बताऊँगा। यहाँ भी वे यही कह रहे हैं। इदं तु ते गुह्यतमं ज्ञानं प्रवक्ष्यामि विज्ञानसहितं - अर्जुन यह जो ज्ञान है जो गुह्यतम है। अत्यन्त गोपनीय है, उसको मैं तुझे बताऊँगा और वह भी विज्ञान के सहित बताऊँगा। तुझे क्यों बताऊँगा? और किसी अन्य को क्यों नहीं बताता हूँ, इस गुह्यतम ज्ञान को? क्योंकि तू अनसूय है। तुझमें किसी प्रकार की असूया या ईर्ष्या नहीं है। तू अशुभ से मोक्ष को प्राप्त होगा। अशुभ से तेरा छुटकारा हो जायेगा। यह इसका शब्दार्थ है। असूया का न होना एक विशेष गुण है क्योंकि असूया वह वस्तु होती

है जिसके द्वारा हम किसी के सद्‌गुणों में भी दुर्गुण देखने लगते हैं और मिथ्यादोष का आरोपण करने लगते हैं। अर्जुन में इस असूया का सर्वथा अभाव था। असूया के कारण हम किसी में अच्छाई को देख नहीं पाते।

ईर्ष्यावृत्ति हमें संगठित नहीं होने देती: जैसे हम रामचरितमानस में वह प्रसंग पढ़ते हैं जब हनुमानजी सीताजी की खोज में जा रहे हैं। उन्होंने छलांग लगा दी सागर को पार करने के लिए। गोस्वामीजी विनयपत्रिका में एक सांकेतिक प्रसंग हमारे समक्ष रखते हैं। यह क्या है? यह जो सागर है – **कुडप अभिमान सागर दुस्तर अपारम् –** यह अहंकार का सागर है जिसको पार करने के लिए हनुमानजी छलांग लगा रहे हैं। मानो एक सागर वह था भौतिक, जिसको हम पढ़ते हैं कि हनुमानजी ने छलांग मारकर लाँघ लिया। सीताजी की खोज में चले और दूसरा सागर हमारे अपने भीतर का है। वह है अभिमान का सागर। यह अत्यन्त दुस्तर है। जिसे पार करना अत्यन्त कठिन है। और कहाँ जा रहे हैं सीताजी की खोज में। सीताजी कौन हैं? साक्षात भक्ति।

सानुज सीय समेत प्रभु राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु सोहत धरें सरीर।। २/३२१/०

भगवान श्रीराम हैं ज्ञान, सीताजी हैं साक्षात भक्ति और लक्ष्मणजी हैं वैराग्य। तो हनुमानजी सीताजी की खोज में चले, मानो वे भक्ति की खोज में चले। और जो भक्ति की खोज में जाता है। कौन सफल होता है? वही सफल होता है जो अभिमान के सागर को पार कर सकता है। अभिमान के सागर को पार करने में तीन बाधाएँ आती हैं दो तो

सागर को पार करने में और तीसरी बाधा आती है लंका में प्रवेश करते समय। दूसरी बाधा आती है सिंहिका की, वही है असली बाधा। सिंहिका कैसी है? सिंहिका उस सागर के जल में है।

निसिचरि एक सिंधु महुँ रहई।
करि माया नभु के खग गहई।।
जीव जंतु जे गगन उड़ाहीं।
जल बिलोकि तिन्ह कै परिछाहीं।।
गहइ छाहँ सक सो न उड़ाई।
एहि बिधि सदा गगनचर खाई।।
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा।
तासु कपटु कपि तुरतहिं चीन्हा।।
ताहि मारि मारुतसुत बीरा।
बारिधि पार गयउ मतिधीरा।। ५/२/१-५

यह दूसरी बाधा है। पहली बाधा थी सुरसा की। सुरसा की बाधा को हनुमानजी ने सिर नवा कर पार किया। मांगू बिदा ताहि सिरु नावा - और यह जो दूसरी बाधा है सिंहिका की, उसको तो खत्म ही कर दिया। गोस्वामीजी विनयपत्रिका में संकेत देते हैं – यह सुरसा सत्त्वगुण की बाधा है। अहंकार अभिमान की बाधा है। और यह बाधा दूर की जा सकती है केवल विनय प्रदर्शित करके। यदि मेरा अहंकार बढ़ जाये तो मैं इस बाधा को कैसे दूर कर सकता हूँ? विनयपूर्वक अपने को छोटा करके। सिर को झुकाकर। तो हनुमानजी यह प्रदर्शित करते हैं हमारे सामने। वे सिर झुकाते हैं और यह जो दूसरी बाधा है – वह तमोगुणी बाधा है। यह बाधा है सिंहिका की। तमोगुणी बाधा का क्या अर्थ है? यह सिंहिका कौन है? कहते हैं यह सिंहिका है राहू की माता। राहू मातु माया मलिन मारि मारुत पूत। गोस्वामीजी कहते हैं यह राहू की माता है। और राहू की वृत्ति कैसी है? हमारे भीतर में जलन पैदा होती है। तो यह मात्सर्य की माता है। मानो यही असूया वृत्ति है। दूसरे के गुण हम देख नहीं पाते। हमारे भीतर में जलन पैदा होती है। तो यह सिंहिका क्या करती है? वह सिंधु में रहती है। निसचरि एक सिंधु मह रहई- सागर के जल में रहती है। क्या करती है? एक माया करती है और जो ऊपर से जाते हैं उनको पकड़कर नीचे गिराती है। और फिर खा लेती है। यह जो ऊपर से जाने वाले को नीचे गिराना-यही वह असूया वृत्ति है। कैसे गिराती है? जो ऊपर से जाएगा तो उसकी छाया नीचे दिखाई दे रही है। और यह सिंहिका क्या करती है? छाया को पकड़ती है और उसे पकड़कर खींचती है। तो ऊपर जानेवाला उसके कारण नीचे खींचा चला आता है। गिर पड़ता है। और फिर उसे सिंहिका खा लेती है। यही छल उसने हनुमान से किया। क्या मतलब है? अब मतलब यह है कि समाज में लोग होते हैं। जो ऊपर से जाते हैं जिनका नाम होता है। परन्तु जिसके भीतर सिंहिका की वृत्ति आ गयी, असूया वृत्ति आ गयी - उसको कुछ भी अच्छा नहीं लगता है। जैसे हमारे ही समाज में अगर कोई एक व्यक्ति बड़ा यशस्वी हो जाए, लोग उसका नाम लेने लगें, तो मेरे हृदय में जलन पैदा हो जाती है। मैं उसे सह नहीं सकता हूँ। और मैं क्या करता हूँ? लोग जब उसके गुणों को बताने लगते हैं, मैं कहता हूँ क्या कहते हो जी! यह तुम क्या गुणों की बात कहते हो? तुम जानते नहीं हो जी यह सब तो सामान्य बात है। तो सामान्यत: यह जो सिंहिका की वृत्ति है, हमारे भीतर बहुत होती है। और विशेषकर हम जो प्रवचनकार होते हैं, संन्यासी होते हैं – उनके भीतर तो यह सिंहिका बड़ी जबरदस्त होती है। किसी की प्रशंसा यह सिंहिका वृत्ति सुनने नहीं देती है। किसी ने आकर कहा कि - महाराज, अमुक-अमुक संन्यासी आये हैं। बहुत सुन्दर प्रवचन होता है। सिंहिका वृत्ति खड़ी हो गयी। "अच्छा! कैसा प्रवचन देते हैं?" बहुत सुन्दर विश्लेषण करते हैं। क्या कहें महाराज! बहुत खूब, बहुत सुन्दर। अच्छा, मैं जैसे समझा-समझाकर कहता हूँ, वैसा वे करते हैं क्या? हाँ महाराज बड़ा अच्छा कहते हैं। "अच्छा मैं जैसे कभी-कभी गा देता हूँ, वैसा करते हैं क्या?" "उनका कण्ठस्वर तो अत्यन्त सुन्दर है महाराज!" 'दूर हट।' बस, सिंहिका खड़ी हो गयी। और तब फिर मैं कहूँगा कि तुम जानते नहीं, खाली वह प्रवचन ही करता है। प्रवचन करने से क्या लाभ? भीतर में जीवन होना चाहिए, जीवन! तुम जानते हो उनको? नहीं जानते हो इसीलिए बड़ाई कर रहे हो। अब यह जो सिंहिका आ गई। मैं उसके गुणों को तो देख ही नहीं सका। कहाँ मुझे हर्षित होना था। देखो, एक व्यक्ति भगवान का नाम लेता है। कितने लोगों को प्रभावित करता है। वह अपनी वाणी के प्रताप से ईश्वर के गुणों का प्रचार और प्रसार करता है। तो कहाँ मुझे आनन्द का अनुभव करना था कि जिस क्षेत्र में मैं काम कर रहा हूँ उसी क्षेत्र में वह भी यशस्वी रूप से काम कर रहा

शेष भाग पृष्ठ ९० पर

साधुओं के पावन प्रसंग (१४)

स्वामी चेतनानन्द

(स्वामी चेतनानन्द जी महाराज से रामकृष्ण संघ के भक्त भलीभाँति परिचित हैं। वर्तमान में महाराज वेदान्त सोसायटी, सेंट लुइस के मिनिस्टर-इन-चार्ज हैं। उन्होंने श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ सारदा, स्वामी विवेकानन्द और वेदान्त पर अनेक पुस्तकें लिखी और अनुवाद की हैं। प्रस्तुत पुस्तक में रामकृष्ण संघ के महान त्यागी संन्यासियों के संस्मरण हैं, जिनके सम्पर्क में लेखक स्वयं आए थे। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु मूल बंगला से इसका हिन्दी अनुवाद धारावाहिक रूप से दिया जा रहा है। – सं.)

गम्भीर महाराज बोस्टन से अमेरिका के विभिन्न केन्द्र घूमकर कालीपूजा के समय हॉलीवुड आये। महाराज ने हालीवुड और सांटा बार्बरा में व्याख्यान दिया। मैं उनके समीप के कमरा में रहता था। एक दिन रात में भोजन करने के बाद उन्होंने मुझसे कहा "सुनो, इस देश में व्याख्यान कैसे दिया जाता है, मुझे नहीं मालूम। इसके साथ-ही-साथ मुझे अच्छी तरह दिखाई भी नहीं देता। तुम कुछ मुख्य बिन्दु बोलो, मैं सुनता हूँ।" मैंने कहा, "महाराज, आप विद्वान साधु हैं। सब कुछ जानते हैं। आप वेदान्त और स्वामीजी के बारे में बोलिये।" महाराज का परिचय स्वामी प्रभवानन्द जी ने दिया। महाराज ने अद्भुत व्याख्यान दिया।

हॉलीवुड में एक दिन रात को भोजन के बाद महाराज बातचीत करने लगे। उसके बाद मठ-मिशन के नियम इत्यादि को लेकर विवेचना हुई। मैंने कहा, "मुझे नियम इत्यादि अधिक पसन्द नहीं है। धर्म को नियम से बाँध देने पर अकर्मण्यता आ जायेगी और उस समय धर्म स्वेच्छा से साँस नहीं ले पायेगा। मनुष्य-हृदय को नियम से बाँधा नहीं जा सकता, क्योंकि मनुष्य यन्त्र नहीं है। इसके अतिरिक्त स्वामी प्रभवानन्द जी से सुना है कि, कृष्णलाल महाराज (स्वामी धीरानन्द) ने एक बार राजा महाराज (स्वामी ब्रह्मानन्द जी) से साधु-ब्रह्मचारियों के लिए कुछ नियम बनाने के लिए कहा। महाराज ने इसके उत्तर में कहा, "स्वामीजी तो पहले ही नियमावली तैयार कर गये हैं। सुनो कृष्णलाल, नियम इत्यादि पर अधिक ध्यान न देकर, आपसी प्रेम-सम्बन्ध को अधिक बढ़ा दो।"

यह सुनकर गम्भीर महाराज ने कहा, "सुनो, नियम इत्यादि के बिना कोई भी संघ कार्य नहीं कर सकता है। स्वामीजी ने कहा है, नियम का पालन करते हुए नियम के पार जाना होगा।" इसके पश्चात् हँसते-हँसते महाराज ने कहा, "एक कहानी सुनो : एक दिन बहुत वर्षा हो रही थी। एक काबुलीवाला शिवमन्दिर में जूता पहने हुए ही अपने पों को भगवान शिव के मस्तक पर रखकर सो गया। उसी समय एक ब्राह्मण भीगने से बचने के लिए उसी शिवमन्दिर में आया। असावधानी के कारण उसका पैर शिवलिंग से टकरा गया। तत्क्षण वह क्षमा माँगने के लिए शिव भगवान को प्रणाम किया। किन्तु शिव भगवान हाथ में त्रिशूल लेकर प्रकट हो गये और उसे दण्ड देने के लिए तैयार हुये। ब्राह्मण रोते हुए बोला, 'प्रभो, यह आपका कैसा विधान हैं? अकस्मात् मेरा पैर आपके शरीर से टकरा गया, उसके लिए मैंने आपसे प्रणाम करके क्षमा माँगी। किन्तु वह दुर्गन्धियुक्त काबुलीवाला जूता पहने हुए आपके मस्तक पर पैर रखकर सो रहा है, आप तो उसके ऊपर क्रोधित नहीं हुये।' शिव भगवान ने कहा, 'सुनो, काबुलीवाला न तो मुझे जानता है और न ही मुझे मानता है। इसलिये मैं उसके इस गलत व्यवहार से क्रोधित नहीं हो सकता। किन्तु तुम तो मेरे महत्त्व को जानते हो और मुझे मानते भी हो। इसीलिए मैं तेरे ऊपर क्रोध कर सकता हूँ।' जो लोग ठाकुर के संघ का महत्त्व एवं महानता के बारे में जानते हैं और ठाकुर को अपना आदर्श मानते हैं, उनको सही मार्ग से ले चलने के लिए ही नियम इत्यादि है। जो साधु अहंकारी हैं, नियम को नहीं मानना चाहते, वे सब उसी काबुलीवाला जैसे हैं।" इसी प्रसंग में महाराज ने एक-दो साधुओं के नाम भी बतलाये।

एक दिन गम्भीर महाराज को हॉलीवुड से ६५ किलोमीटर दूर Trabuco ले गया। महाराज वहाँ पर एक-दो दिन थे। उन्होंने Laguna Beach के Blue Pacific को देखने की इच्छा प्रकट की। स्वामी कृष्णानन्द, गम्भीर महाराज, ध्रुव और मैं एक साथ ही गये। उस समय Beach में सूर्य प्राय: अस्ताचल हो चले थे। अद्भुत दृश्य था। उन्होंने गाड़ी से उतरकर प्रशान्त महासागर को छूने की इच्छा प्रकट की। अकस्मात् एक लहर ने आकर उनके चरणों को भीगो दिया। एक अमेरिकी उनके गेरुआ वस्त्र को देखकर बोला, "Welcome to California!" मैंने कहा, "महाराज, प्रशान्त महासागर आपके पैरों की धूलि ले गया।" कृष्णानन्द की गाड़ी में और भी मोजे थे। उनके भीगे हुए मोजे को बदला गया। मैंने उनके अनेक फोटो लिये तथा उनको मठ में भेजा था। इसके उत्तर में उन्होंने लिखा था, "The setting sun with setting Gambhirananda." (अस्तगामी सूर्य के साथ अस्तगामी गम्भीरानन्द) बहुत अच्छा हुआ।"

१९७७ ई. में हॉलीवुड से जब मैं पहली बार मठ आया, उस समय गम्भीर महाराज संघ के महासचिव थे। उनके साथ सन्ध्या समय घूमने जाया करता था। महाराज के साथ मैं बहुत घुला-मिला था। मैंने एक दिन कहा, "महाराज, पाश्चात्य देशों में हमलोगों को तीन 'प'-वाले साधु चाहिये।" "किस प्रकार के?" "पवित्र, प्रेमिक एवं पण्डित।" स्वामी आत्मस्थानन्द जी महाराज विनोद करते हुए मुझसे बोले, "तुम, साधु-निवास से घूम कर आओ, देखो कितने मिलते हैं।" सितम्बर महिने में एक दिन घूमते-घूमते बातचीत के दौरान मैंने कहा, "महाराज, स्वामीजी ने कहा है, बड़े पेड़ की छाँव के नीचे छोटा पेड़ बड़ा नहीं होता है। मुझे छोटे लोगों के लिए स्थान बनाने हेतु जाना ही होगा।" गम्भीर महाराज ने कहा, "स्वामीजी महापुरुष थे। वे ही हमारे आदर्श हैं।" उसके अगले दिन मठ में स्वामी गंगेशानन्द जी से सुना कि गम्भीर महाराज ने महासचिव के पद से त्यागपत्र दे दिया है और कहा कि उनकी आँखों की रोशनी की कमी के कारण वे इस उतरदायित्वपूर्ण कार्य के पद पर नहीं रहना चाहते। काँकुड़गाछी से स्वामी भूतेशानन्द जी एवं अन्यान्य वरिष्ठ न्यासीगणों के अनुरोध पर गम्भीर महाराज अपने कार्यकाल के निश्चित अवधि तक दायित्वों का निर्वहन करते रहे। १९७७ ई. के शेष भाग में अवकाश लेकर वे लखनऊ गये। तथा स्वामी वन्दनानन्द जी उनके कार्य का संचालन करते रहे। उसके बाद गम्भीर महाराज संघ के उपाध्यक्ष हुए।

१९८२ ई. में सेंट लूइस से जब मैं मठ आया, उस समय वे मन्दिर के पीछे वाले मकान में रहते थे। एक दिन मैंने कहा, "महाराज, आपकी पुस्तक श्रीरामकृष्ण-भक्तमालिका में परिवर्धन की आवश्यकता हैं, क्योंकि अभी और नयी सामग्री पायी गयी हैं।" महाराज ने कहा, "कौन करेगा! मैं आँखों से अच्छी तरह नहीं देख पाता हूँ।" लेकिन फिर भी उन्होंने साहित्यिक कार्य जारी रखा। महाराज प्रतिदिन सेवकों की सहायता से युगनायक विवेकानन्द में संशोधन करते थे। उन्होंने गीता और छान्दोग्य उपनिषद् के शांकर भाष्य का अँग्रेजी अनुवाद किया। मैंने महाराज को गीता की पाण्डुलिपि को त्रिचूर में स्वामी गभीरानन्द के पास भेजने का परामर्श दिया। क्योंकि वे अद्वैत आश्रम में प्रूफ रीडिंग करते थे तथा महाराज के आठ उपनिषदों का प्रेस कॉपी भी पढ़ चुके थे। उन्होंने मेरे परामर्श का अनुमोदन किया। ***(क्रमश:)***

जयतु नर्मदे हर हर माँ !

पं. गिरिमोहन गुरु, होशंगाबाद

युग-युग से जग धन्य हो रहा महिमा गान सुनाकर माँ।
अमृत-सा जल बाँट रही हो अमरकंठ से आकर माँ।।
कच्छ-मच्छ सब स्वच्छ करें जल उछल-उछल नव नर्तन माँ।
नीर-पीर हर तीर तारने वाला कहें सकल जन माँ।।
पाहन-पावन हुए विमल चल जल में अवगाहन कर माँ।
घाट-घाट के ठाट निराले हैं शिव तीर्थ मनोहर माँ।।
सिद्ध प्रसिद्ध हुए आराधक साधक तुझको ध्याकर माँ।
छकें थकें न रुकें भक्त जन तव महिमा गा-गाकर माँ।।
गुरुकुल पर की कृपा आपने रूप चतुर्भुज लेकर माँ।
सेवाश्रम में आन विराजीं साथ लिए अखिलेश्वर माँ।।
जय शिवशंकर जय अखिलेश्वर जयतु नर्मदे हर हर माँ।
हर हर जन की विपद,सुखद कर जीवन को सुन्दरतर माँ।।
मातु नर्मदे हर, संकट हर जन-जन को हर्षाओ माँ।
जीवन की फुल बगिया महके, दया–दृष्टि वर्षाओ माँ।।
आगत जन नत शीश प्राप्त आशीष करें दो संबल माँ।
गुण-गण गायें ध्यान लगायें पाये मनवांछित फल माँ।।

मेरी स्मृतियों में महाकवि निराला

लक्ष्मीनिवास झुनझुनवाला, प्रसिद्ध उद्योगपति और समाजसेवी, ग्रेटर नोएडा

मेरी स्मृति यदि मुझे धोखा नहीं दे रही है, तो यह सन् १९५६ की बात है। मेरी अवस्था अठाईस साल की थी। सन् १९४७ तक मेरा विद्यार्थी-जीवन रहा। कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा में स्वर्ण पदक व प्रथम स्थान प्राप्त कर मैंने शुद्ध गणित में एम.ए. में प्रवेश किया। मैं अत्यन्त भाग्यशाली था कि तत्कालीन भारत के सर्वश्रेष्ठ वैज्ञानिक श्री सत्येन बोस का मैं प्रिय विद्यार्थी था। श्री सत्येन बोस आईंस्टाइन के साथ अनुसन्धान कर रहे थे तथा उस अनुसंधान में ही 'ब्राउननियन थ्योरी ऑफ कंडेंसेशन' का पता चला था। इसे 'बोस आईंस्टाइन थ्योरी' कहा जाता है तथा इस अनुसन्धान के दूरगामी प्रभाव विज्ञान पर पड़े हैं। आज बयासी साल बाद 'टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च' के प्रमुख वैज्ञानिक उन्नीकृष्णन ने सत्येन बोस की गणना के आधार पर उस कंडेंसेशन का निर्माण कर बड़ी सफलता वर्ष २००७ में पाई है। पर परिवार के दबाव के कारण मुझे शिक्षा छोड़कर व्यापार में प्रवेश करना पड़ा। राष्ट्रपति कलाम साहब से जब मैं उनके प्रिय विषय नैनोटेक्नोलॉजी पर मार्गदर्शन लेने गया, तो उन्होंने मुझे उलाहना दिया कि इतने प्रतिभाशाली वैज्ञानिक श्री सत्येन बोस के विद्यार्थी होकर भी मैंने गणित में अनुसन्धान नहीं किया।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' पर जारी डाक टिकट

भारत की स्वाधीनता के साथ मैंने अपना व्यापारिक जीवन प्रारम्भ किया। जिस भ्रष्टाचार की चर्चा आज है, उसका प्रारम्भ भारत की आजादी के पहले ही हो गया था। उस समय लाइसेंस, परमिट का राज्य था। सरकारी तंत्र की शक्तियाँ असीमित थीं तथा सब जगह सरकार का हस्तक्षेप था। हिन्दी साहित्य अध्ययन में मेरी रुचि ऐसे वातावरण में भी बनी रही। उस समय श्री ललिता प्रसाद शुक्ल कलकत्ता के हिन्दी के विद्वान माने जाते थे। विशारद कर साहित्य रत्न की तैयारी में मैं उनके पास जाया करता था। अत: हिन्दी साहित्य की गतिविधियों की जानकारी मुझे प्राय: रहती थी।

पुन: सन् १९५६ पर आता हूँ। समाजसेवी श्री सीतारामजी सेकसरिया व श्रीराधाकृष्ण नेवटिया ने हिन्दी के विशाल कवि सम्मेलन का आयोजन किया था। उसमें महादेवी वर्मा तथा सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' आदि सभी आमन्त्रित थे। मुझे व्यापार में प्रवेश करते ही सफलताएँ मिलीं तथा परिवार ने समृद्धि देखी। कलकत्ता में नया मकान उसी समय बनाया था। परिवार में सभी मुझसे अत्यन्त प्यार करते थे। मेरी माताजी का देहान्त मेरी आठ वर्ष की आयु में ही हो गया था। मेरी चाची ने मेरा पालन-पोषण किया था तथा मुझे माता की कमी का कभी आभास नहीं होने दिया। उस पृष्ठभूमि में जब मुझसे श्री सीतारामजी सेकसरिया ने पूछा, 'क्या तुम निरालाजी और उनके सहयोगियों को अपने घर रख सकते हो?' तो मैंने उत्साह से हामी भर दी। निरालाजी का हिन्दी में वही स्थान था, जो बँगला में रवीन्द्रनाथ टैगोर का था। मैंने अपना परम सौभाग्य समझा कि मुझे उनके सान्निध्य का अवसर प्राप्त होगा।

संध्या में वे और उनके साथी मदिरा पीकर मस्त हो जाते। मुझे यह देखकर अनुताप होता कि इतना प्रतिभाशाली कवि कैसे लोगों से घिरा हुआ है। प्रथम रात्रि के बाद ही मुझसे रहा नहीं गया। मैंने उन्हें अगले दिन बड़ी नम्रता से कहा, ''आपकी प्रतिमा मेरे मन में अत्यन्त उच्च स्तर पर स्थापित है, पर संध्याकाल में आपका अपने साथियों के साथ मदिरापान देखकर यह प्रतिमा धूमिल हो रही है। साहित्य का आनन्द भी उसी मात्रा में धूमिल हो जाएगा। यह तो मेरे जीवन में बहुत बड़ी क्षति होगी। मेरे पिताजी, मेरे चाचाजी आदि की तो साहित्य में कोई रुचि नहीं है, पर वे सब अपने को गौरवान्वित अवश्य मानते हैं कि भारत के सर्वश्रेष्ठ हिन्दी कवि का उनका परिवार आतिथ्य कर रहा है। पर यह सब देखकर उन्हें भी निराशा अवश्य हो रही होगी। यह उनकी महानता है तथा श्री सीताराम जी सेकसरिया के

प्रति आदर है कि वे मुझे उलाहना नहीं दे रहे हैं।

निरालाजी ने गम्भीरता से मेरी बात को लिया और कहा, ''संध्या को तुम सारे परिवार को एकत्र करो, तो मैं 'राम की शक्ति-पूजा' सुनाऊँगा।''

अगले दिन की संध्या-बेला में सारा परिवार एकत्र हो गया। कुछ अन्य साहित्यप्रेमियों को भी मैंने आमन्त्रित कर लिया था। अच्छा वातावरण था। आज निरालाजी ने मदिरा का सेवन नहीं किया था।

निरालाजी ने राम की शक्ति-पूजा की पृष्ठभूमि समझाई। सारांश यह था – ''प्रत्येक युग में भगवान दुर्जनों का संहार करने के लिए अवतार लेते हैं। द्वापर युग में कृष्णावतार हुआ। कौरवों-पांडवों के बीच महाभारत हुआ। इच्छा मृत्यु का वरदान प्राप्त महामानव भीष्म पितामह की सहानुभूति व स्नेह पांडवों के प्रति था, पर युद्ध वे कौरवों की ओर से कर रहे थे। द्रोणाचार्य-कृपाचार्य सबको पांडव प्रिय थे, पर युद्ध वे भी कौरवों की ओर से ही कर रहे थे। युद्ध आरम्भ होनेवाला है। अर्जुन सगे-सम्बन्धियों को देख विचलित हो जाता है, वह तर्क करता है कि जो पूज्य हैं, उनकी हत्या कर राज्य का बोझ अत्यन्त पाप का कृत्य होगा। वह भूल जाता है कि परिवार से बड़ा राष्ट्र है। यदि कौरवों का शासन होगा, तो राष्ट्र नष्ट हो जाएगा। भगवान् कृष्ण उसका मोह भंग करते हैं और महाभारत के युद्ध में अर्जुन कौरवों का संहार करता है।''

इसके पहले त्रेता युग में भी ऐसा ही दृश्य उपस्थित हो रहा है। युद्ध आरम्भ हो गया है तथा राम विचलित हो रहे हैं। निराला आरम्भ करते हैं –

''रवि हुआ अस्त ज्योति के पत्र पर लिखा
अमर रह गया राम-रावण का अपराजेय समर''

शिव-धनुष भंग कर राम ने जानकी का वरण किया है। शिव की भक्ति रावण को प्राप्त है। अर्जुन की-सी दशा राम की होती है। वहाँ कृष्ण तो थे, पर यहाँ अवतार स्वयं दुर्बलता का शिकार हो गये हैं –

''रावण प्रहार दुर्वार विकल वानर दलबल
मूर्च्छित सुग्रीवांगद भीषण गवाक्ष भयानल
...राक्षस पदतल पृथ्वी टलमल''

निराला खड़े हो जाते हैं। उनके चेहरे का भाव असुरों की वीरता का अद्‌भुत प्रदर्शन करता है। कुछ ही क्षणों में चेहरा उदास हो जाता है। वे गाते हैं –

''प्रशमित है वातावरण, नमित मुख सांध्यकमल
लक्ष्मण चिंतापल पीछे वानर वीर सकल
रघुनायक आगे अवनी पर नवनीत चरण''
'स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा
फिर-फिर संशय रह-रह उठता
जग जीवन में रावण जय भय' –
''ऐसे क्षण अंधकार घन में जैसे विद्युत
झागी पृथ्वी तनया कुमारिका छवि अच्युत...
नयनों का नयनों से रोपन फिर संभाषण
पलकों का नव पलकों पर प्रथमोत्थान मिलन ...
सिहरा तन क्षण भर भूला मन लहरा समस्त
हर धनुर्भंग को पुनर्वार ज्यों उठा हस्त''

निराला का चेहरा प्रसन्न हो उठता है। वे आगे बढ़ते हैं। राम के तन पर ज्वार-भाटे की तरह तरंगें उठती हैं व समुद्रशायी हो जाती हैं –

''फिर देखी भीम मूर्ति आज रण देखी जो
आच्छादित किए हुए सम्मुख समग्र नभ को
लख शंकाकुल हो गए अतुल बल शेष शयन
खिंच गए दृगों में सीता के राममय नयन
फिर सुना हँस रहा अट्टहास रावण खल-खल
भावित नयनों से सजल गिरे दो मुक्तादल''

निराला की आँखों से अश्रु निकलते हैं और अगले ही क्षण क्रोध से चेहरा ला हो जाता है –

''ये अश्रु राम के' आते ही मन में विचार
उद्वेल हो उठा शक्ति खेल सागर अपार। ...
उस ओर शक्ति शिव की दश स्कंध पूजित
उस ओर रुद्रवंदन जो रघुनंदन कूजित
करने को ग्रस्त समस्त व्योम कपि बढ़ा अटल ..
बोली माता 'तुमने जग रवि को लिया निगल
तब नहीं बोध था तुम्हें रहे बालक केवल''

अब निराला के मुख से विभीषण बोलते हैं –

''हे सखा' विभीषण बोले 'आज प्रसन्न वदन
वह नहीं देखकर जिसे समग्र वीर वानर ...
रघुकुल गौरव लघु हुए जा रहे तुम इस क्षण'
तुम फेर रहो हो पीठ, हो रही हो जब जय रण''

निराला चिल्लाते हैं –

''रावण ! रावण लंपट, खल, कल्मष अनाचार
जिसने हित कहते किया मुझे पद प्रहार
बैठा उपवन में देखा दुख सीता को फिर
यह शब्द सुन सब सभा रही निस्तब्ध
राम को स्मित नयन''

रावण शिव का भक्त है। उसे शिव की महाशक्ति भी प्राप्त है। स्वयं राम आश्चर्य करते हैं कि शिव ऐसे पापी की भी सहायता करते हैं।

''बोले रघुमणि 'मित्रवर विजय होगी न !'
समर यह नहीं रहा नर वानर का राक्षस सारण
उतरी पर महाशक्ति पा रावण से आमन्त्रण
अन्याय जिधर है उधर शक्ति
कहते छलछल हो गए नयन ...
बोले 'आया न समझ में यह देवी विधान
रावण अधर्मरत भी अपना, मैं हुआ अपर
यह रहा शक्ति का खेल समर, शंकर-शंकर ...
कह हुए भानु कुलभूषण वहाँ मौन क्षण भर
बोले विश्वस्त कंठ से जाम्बवान 'रघुवर
विचलित होने का नहीं, देखता मैं कारण
हे पुरुषसिंह तुम भी यह शक्ति करो धारण
आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर''

निराला ने 'आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर' को कई बार भिन्न-भिन्न मुद्राओं में दोहराया। आगे कहने लगे –

''शक्ति की करो मौखिक कल्पना करो पूजन
छोड़ दो समर जब तक न सिद्धि हो रघुनन्दन
तब तक लक्ष्मण हैं महावाहिनी के नायक ...
कुछ समय तक स्तब्ध हो रहे राम छवि में निमग्न
फिर खोले पलक कमल ज्योतिर्दल ध्यान लग्न ...
बोले प्रियतर स्वर से अन्तर सींचते हुए
'चाहिए हमें एक सौ आठ कपि इंदीवर ...
तोड़ लाओ वे कमल, लौटकर लड़ें समर' ...
पूजोपरान्त जपते दुर्गा, दुर्ग भुजा नाम ...
बीता वह दिवस, हुआ मन स्थिर इष्ट के चरण
गहन से गहन होने लगा समाराधन''

निराला के नेत्रों से भक्तिमय अश्रुओं की धारा बहने लगी। श्रोता मंत्रमुग्ध हो देखते और सुनते रहे –

''क्रम-क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस
चक्र-से-चक्र मन बदला गया ऊर्ध्व (निरालस)
कर जप पूरा कर एक चढ़ाते इंदीवर
निज पुरश्चरण इस भाँति रहे हैं पूरा कर।
चढ़ा षष्ठ दिवस आज्ञा पर हुआ समाहित मन
प्रति जप से खिंच-खिंच होने लगा महाकर्षण
संचित त्रिकुटी पर ध्यान द्विदल देवी पद पर
जप के स्वर लगा काँपने थर-थर-थर अम्बर
दो दिन निस्पंद एक आसन पर रहे राम
अर्पित करते इंदीवर जपते हुए नाम।
आठवाँ दिवस मन ध्यानमुक्त चढ़ता ऊपर
कर गया अतिक्रम ब्रह्मा हरि शंकर का स्तर''

वातावरण राममय हो रहा था। श्रोता विदेह हो चले थे।

''रह गया एक इंदीवर मन देखता पार
प्राय: करने हुआ दुर्ग जो सहस्त्रार
द्विप्रहर, रात्रि, साकार हुई दुर्गा छिपकर
हँस उठा ले गई पूजा का प्रिय इंदीवर
यह अंतिम जय, ध्यान में देखते चरण युगल
राम ने बढ़ाया कर लेने को नीलकमल
कुछ लगा न हाथ, हुआ सहसा स्थिर मन चंचल
ध्यान की भूमि से उतरे, खोले पलक विमल ...
जीवन को जो पाता ही आया है विरोध
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध
जानकी ! हाय उद्धार प्रिया का हो न सका। ...
राम में जगी स्मृति हुए सजग पा भाव प्रमन।
'यह है उपाय' कह उठे राम जो मंद्रित धन
कहती थीं माता मुझको सदा राजीव नयन
दो नील कमल हैं शेष अभी, यह पुरश्चरण
पूरा करता हूँ देकर मात एक नयन' ...
जिस क्षण बँध गया बेधने को दृग दृढ़ निश्चय
काँपा ब्रह्माण्ड हुआ देवी का त्वरित उदय।
'साधु-साधु, साधक, धीर धर्मधन'
कह लिया भगवती ने धन्य राम राघव का हस्त धाम
देखा राम ने, सामने श्री दुर्गा का स्वर ...
मस्तक पर शंकर ! पदपद्मों पर श्रद्धा भर

श्री राघव हुए प्रणत मंद स्वर वंदन कर।
होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन
कह महाशक्ति राम के वंदन में हुई लीन।

हम सब मंत्र-मुग्ध होकर सुनते रहे। निराला के प्रति श्रद्धाभाव से मस्तक नत हो गया। निराला में रुचि बढ़ी, तब पता चला कि शिव मंगल सिंह 'सुमन' निराला के अत्यन्त भक्त थे। सुमन भावावेश में राम की शक्ति-पूजा पढ़कर सुनाया करते थे। स्वामी सारदानन्द ने 'भारत में शक्ति-पूजा' नामक एक पुस्तक की रचना की थी। उसी पुस्तक से प्रेरणा लेकर निराला ने यह कविता लिखी थी। उनका बँगला से सम्बन्ध जन्म से ही रहा। उनके पिता मेदिनीपुर के महिषादल में राजवाड़ी में चौकीदार होने के कारण निराला की प्रारंभिक शिक्षा बँगला में हुई। निराला (१८९६-१९६१) कहा करते थे, "हिन्दी की तरह बँगला भी मेरी मातृभाषा है।" निराला का विवाह चौदह वर्ष की आयु में करीब सन् १९१० में हुआ। पत्नी की आयु ग्यारह वर्ष की थी। पत्नी ने ही उन्हें हिन्दी साहित्य में गहराई से प्रवेश करने की प्रेरणा दी। पत्नी का देहान्त सन् १९१६ में हो गया। पत्नी के प्रति अपनी कृतज्ञता यापन करते वे थकते नहीं थे। इसीलिए उन्होंने पुनर्विवाह नहीं किया। उन्माद की अवस्था में वे रात-रात भर श्मशान में घूमते रहते। एक पुत्र व एक कन्या थी। उनका भार उनकी सास ने ग्रहण किया। अपना पेट भरने के लिए वे नौकरी खोजने लगे। साथ-साथ खूब लिखते भी। श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी की निराला के प्रति बड़ी सहानुभूति थी। सन् १९१९ में उन्होंने निराला के लेख भी अपनी पत्रिका 'सरस्वती' में प्रकाशित किया था। उस समय रामकृष्ण मिशन की मायावती (अलमोड़ा शाखा) व अद्वैत आश्रम के अध्यक्ष स्वामी माधवानन्द जी ने पत्रिका में विज्ञापन दिया था कि उन्हें हिन्दी पत्रिका निकालने के लिये सम्पादक की आवश्यकता है। हजारी प्रसादजी ने निराला की सिफारिश की। स्वामी माधवानन्दजी ने उन्हें मिलने के लिए बुलाया – उनका पत्र अंग्रेजी में था, पर निराला का उत्तर बँगला में था।

'समन्वय' नाम से हिन्दी पत्रिका आरम्भ हुई। निराला ने भी 'युगावतार भगवान् रामकृष्ण' शीर्षक लेख भेज दिया। लेख का आदर हुआ। सन् १९२२ में उन्होंने पत्रिका का भार ग्रहण किया। आठ महीने में दो सम्पादक बदले जा चुके थे। माधवानन्दजी स्वयं सम्पादक रहे, उन्हें हिन्दी का अच्छा ज्ञान था। पर सारा काम निराला ही करते थे।

निराला की श्रीरामकृष्ण पर अटूट श्रद्धा थी। 'उद्बोधन' नामक बंगला पत्रिका उद्बोधन कार्यालय से निकलती थी। माँ सारदा और ठाकुर की अन्य महिला भक्त श्रीमाँ के साथ उद्बोधन कार्यालय के ही भवन के कुछ कमरों में रहती थीं। वहीं स्वामी सारदानन्द जी से निराला जी का परिचय हुआ। सारदानन्द ठाकुर के शिष्य और विवेकानन्द के गुरु भाई थे। 'श्रीरामकृष्णलीला-प्रसंग' उन्होंने तीन खंडों में लिखी थी, जिसमें ठाकुर की लीलाओं का प्रामाणिक, विश्वसनीय वर्णन है। निराला ने स्वयं लिखा है – 'सारदानन्दजी से मुझे बहुत स्नेह मिला।' एक स्वप्न का वर्णन करते हुए निराला लिखते हैं – "निद्रावस्था में देखा कि स्वामी सारदानन्द महाराज ध्यानमग्न हैं। ऐसा ईश्वरीय ज्योतिपूर्ण दर्शन मैंने आज तक नहीं प्राप्त किया है। प्रसन्न नेत्र, ऊर्ध्व बाहु, मुख-मंडल पर महानन्द की दिव्य-ज्योति, समस्त अस्तित्व ऊर्ध्व स्थित। उसी समय एक सेवक-संन्यासी उनके लिए रसगुल्ला ले आये। ध्यान में सारदानन्दजी ने संन्यासी का ध्यान मेरी ओर आकृष्ट किया। सेवक-संन्यासी ने मेरे हाथ में रसगुल्ले की तश्तरी थमा दी। मैं जाकर स्वामीजी को रसगुल्ला खिला आया तथा तश्तरी सेवक महाराज को लौटा दी। बस उसी समय आँख खुल गई। सपना टूट गया।" स्वामी सारदानन्द के लिए निराला ने अत्यन्त आदरभाव से लिखा है – "मुझे उन्होंने शक्ति प्रदान की। उस महानिदेशक, महाकवि, स्वयंभू, मनस्वी, चिरब्रह्मचारी, संन्यासी, महापंडित, सर्वस्व त्यागी के समक्ष देवत्व, इन्द्रत्व और मुक्ति तुच्छ हैं। पर निराला के मन में संघर्ष चलता रहता था कि सोने के बाद देवता मुझसे बात करते थकते नहीं हैं, पर जाग्रत अवस्था में क्यों नहीं दिखते।" निराला लिखते हैं, "रात्रि और दिन के अनुभव के द्वंद्व ने मुझे घोर नास्तिक भी बना दिया था, पर पूर्वजन्म के संस्कार और सारदानन्दजी के आशीर्वाद से पुनः आस्तिकता जाग्रत हो जाती थी। सारदानन्दजी के जिस सेवक ने मुझे रसगुल्ले दिए थे, उसी ने कहा था 'तुम मंत्र नहीं लोगे? आओ'।'

निराला लिखते हैं – ''मैंने सोचा कि महाप्रसाद की तरह यहाँ मंत्र भी बँटते हैं क्या? ले लूँ, क्षति क्या होगी?'' मैं स्वामीजी के कमरे में चला गया। मेरा कभी तंत्र-मंत्र में विश्वास नहीं रहा, फिर भी मैंने कहा, ''मैं मंत्र लेने आया हूँ।'' स्वामी सारदानन्दजी ने कहा कि किसी और दिन आना। कई दिन हो गए, मैं गया नहीं। माँ सारदा का स्वर्गवास हो चुका था। मैं उनके कमरे में 'तुलसी रामायण' का पाठ करता था। पहले दिन के पाठ शेष होने पर, स्वामी सारदानन्द जी की आज्ञा से मुझे प्रसाद में दो रसगुल्ले दिए गए। सबको एक ही मिलता था। केवल मिशन के प्रथम संघाध्यक्ष ब्रह्मानन्दजी महाराज के प्रिय शंकर महाराज को दो रसगुल्ले पाते देखा था। रामकृष्ण मिशन के प्रथम संघाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्द के वे अत्यन्त प्रिय शिष्य थे। एक दिन मैं सारदा माँ को उनके कमरे में प्रणाम कर सीढ़ी से नीचे उतर रहा था तथा मेरे हाथ में प्रसाद था। मन अत्यन्त प्रफुल्ल, फूल की तरह प्रस्फुटित एवं हलका था। स्वामीजी आ रहे थे। मेरे भावों के आवेग को देख वे एक तरफ खड़े हो गए। कुछ क्षण के बाद मुझे होश हुआ, तो उनको रास्ता देने के लिए मैं एक तरफ हट गया। उन्होंने पूछा, ''प्रसाद किसके लिए ले जा रहे हो?'' मैंने उत्तर दिया, ''अपने लिए ही।'' उन्होंने कहा, ''ठीक है, खाकर आओ।'' मैं चटपट प्रसाद खाकर ऊपर गया। स्वामीजी अपने कमरे के सामने ही खड़े थे। मुझे देख अत्यन्त स्नेह से पूछा, ''तुम उस दिन कुछ कहना चाहते थे।'' मैंने कहा, ''मैं तंत्र-मंत्र में विश्वास नहीं करता।'' उन्होंने पूछा, ''तुमने क्या दीक्षा ले ली है?'' मैंने कहा, ''हाँ, ले ली है।'' उस समय मेरी आयु नौ वर्ष की थी। उन्होंने कहा, ''हम लोग तो श्रीरामकृष्ण को ही ईश्वर मानते हैं।'' मैंने कहा, ''मैं भी यही मानता हूँ।'' वे गंभीर भावमग्न अवस्था में मेरे सामने आए। मुझे लगा कि मैं एक गहन शान्ति सागर में डूब रहा हूँ। तदुपरान्त वे मेरे कंठ में एक ऊँगली डाल कोई बीज-मंत्र लिखने लगे। मैंने मन को कंठ की ओर केन्द्रित कर पढ़ने की चेष्टा की, पर कुछ समझ नहीं पाया।

''मैं मंत्र की शक्ति की परीक्षा लेने के लिए उत्सुक हो गया। कभी-कभी पूजा-पाठ आदि करता था। वह भी बंद कर दिया, पर मुझे लगा कि मेरे मन में उथल-पुथल मच रहा है। रामकृष्ण मिशन के साधु मुझे आकर्षित कर रहे हैं। इसके बाद एक दिन स्वप्न देखा – ज्योतिर्मय समुद्र भगवान की भुजाओं पर मेरा मस्तिष्क है और मैं तरंगों पर तैर रहा हूँ।

''उसके उपरान्त दस वर्षों में ऐसे आश्चर्यजनक दर्शन प्राप्त किए हैं कि महाकवि और विद्वान सुनकर हँसेंगे। तीन वर्ष हुए, वही मंत्र अग्नि की तरह ज्वलन्त होकर मेरे सामने प्रकट हो रहा था। मैंने उसे पढ़ भी लिया।''

निराला का कलकत्ता प्रवास अत्यन्त आर्थिक कष्ट में कटा था। फिर भी विवेकानन्द तथा रवीन्द्रनाथ के प्रमुख बँगला ग्रंथों का उन्होंने गहन अध्ययन किया था। कलकत्ता में थिएटर देखने जाते, गायक व वादकों से मिलते और चर्चा करते। उधर कुश्ती के शौकीन थे, तो खूब कुश्ती भी करते। उनका विश्वास था कि शक्तिशाली शरीर के बिना व्यक्ति अच्छा कवि नहीं हो सकता। विवेकानन्द की अनेक कविताओं का उन्होंने सुन्दर अनुवाद किया है। सर्वाधिक सुन्दर अनुवाद मेरी दृष्टि में है – 'नाचे उस पर श्यामा'।

स्वामी सारदानन्द

जब वे कुछ भी अत्यन्त तेज स्वर में बोलते, तो कहते, ''यह मत सोचना कि निराला बोल रहा है, मेरे मध्य से विवेकानन्द बोल रहे हैं।'' रामकृष्ण मिशन के साधुओं से उनकी अत्यन्त घनिष्ठता थी।

उसी अवधि में उनसे मिलनेवाले एक साहित्यकार ने बताया कि एक दिन बात चल गई कि भारत इतना निर्बल क्यों हो गया। गत २५०० वर्षों में जो आया, उसी ने हमें गुलाम बना लिया - चाहे सिकन्दर हो, शक व हूण हो, अफगानिस्तान का गजनवी या गोरी हो, अरब के मुसलमान हों, फ्रेंच हों, पुर्तगाली हों, चाहे अँग्रेज हों, सबने हम पर शासन किया।

इस पर निरालाजी ने कहा कि भारत ने शक्ति-पूजा छोड़ दी। हमारी सारी आराध्य देवियाँ काली-महिषासुरमर्दिनी शक्तिशाली हैं, पर हमने उनकी आराधना शक्ति प्राप्त करने के लिए नहीं की। वंदेमातरम् शक्ति का गीत था। बंग-भंग आन्दोलन को उस अकेले गीत ने अँग्रेजों को हटाने के लिए बाध्य किया। हमने उसे राष्ट्रीय गीत होने का गौरव तो

नहीं दिया, पर अँग्रेज बादशाह की स्तुति में लिखे इस गीत का हमने चयन जरूर किया। फिर उन्होंने कहा कि भगवान् से प्रार्थना करो –

''जागो फिर एक बार...
चतुरंग चमू संग
सवा-सवा लाख पर एक को चढ़ाऊँगा
गोविन्द सिंह निज नाम जब कहाऊँगा ...
शेरों की माँद में आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार
सत श्री अकाल,
भाल-अनल धक-धक जला
भस्म हो गया था काल।''

निरालाजी का क्रोध तमतमा रहा था। वे भारतीय संस्कृति के वीरत्व का वर्णन कर रहे थे –

''पश्चिम की उक्ति नहीं
गीता है गीता है
स्मरण करो बार-बार...
पशु नहीं वीर तुम
समर-शूर क्रूर नहीं
कालचक्र में ही पड़े
आज तुम राज कुँवर – समर सरताज
तुम हो महान तुम सदा हो महान्।''

आज हम स्वाधीन अवश्य हैं, पर पाश्चात्य संस्कृति हम पर शासन कर रही है। इस पर उन्होंने बताया कि यदि रामकृष्ण परमहंस न आए होते तो हिन्दू संस्कृति उस समय बच न पाती। इस आशय की उन्होंने एक कविता रामकृष्णदेव के प्रति लिखी थी। उसकी कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत कर रहा हूँ –

''पराधीन भारत की प्रज्ञा क्षीण हुई जब
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्णत्रय
पश्चिम में राम
फिर नूतन प्रभात में
नूतन कर से लाए
ज्योतिर्मय फिर हँसकर
दिग्मंडल पर छाए।''

गाँधीजी ने गुरुवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की प्रशंसा करते हुए उल्लेख किया – ''हिन्दी को भी ऐसा प्रखर कवि उत्पन्न करना चाहिए।'' इस पर निराला ने उनसे प्रश्न किया – 'क्या उन्होंने निराला की कृतियाँ देखी हैं?' सभा में तर्क-वितर्क होने लगा। जब गाँधीजी ने कहा कि हिन्दी उनकी मातृभाषा नहीं है, तो निराला ने बड़े साहस से कहा कि हिन्दी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता करने का उनको क्या अधिकार था? उन्होंने मेरी कविताएँ नहीं देखी हैं। कविताएँ कवि के हृदय से उत्पन्न होती हैं – भाषा अन्तर्जगत् की वस्तु है – बँगला का सौभाग्य है कि उसमें उर्दू आदि भाषाओं को मिलानेवाला कोई गाँधी उत्पन्न नहीं हुआ। हिन्दी-उर्दू मिश्रित गाँधीजी द्वारा प्रचलित हिन्दुस्तानी पर निराला व्यंग्य कर रहे थे।

सात वर्ष पश्चात् सन् १९६१ में निरालाजी की मृत्यु हो गई। आज छियालीस वर्ष बाद भी उनकी स्मृति मन को आनन्दित कर देती है। यह मेरा परम सौभाग्य था कि मुझे उनके आतिथ्य का गौरव प्राप्त हुआ था। ○○○

पृष्ठ ८२ का शेष भाग

है। परन्तु नहीं, यह सिंहिका वृत्ति मुझे इस प्रकार आनन्द नहीं लेने देती। वह खींचती है। मानो टाँग पकड़कर खींचती है। मैं बना बनाकर बोलूँगा। ''तुम जानते नहीं हो, उसे तुम जानते नहीं हो, मैं बहुत दिनों से जानता हूँ। खाली अच्छा प्रवचन होने से क्या हो गया? उसमें अनेक दोष हैं।'' जो दोष नहीं हैं, मैं कल्पना करके उन दोषों को लगा देता हूँ। इसको कहते हैं - असूया। यह असूया वृत्ति है। जो परिवार को तोड़ देती है। समाज को तोड़ देती है। संगठन को तोड़ देती है। कोई संस्था खड़ी क्यों नहीं रह पाती? एक संस्था में ऐसा कोई व्यक्ति यशस्वी हो गया तो दूसरे कुछ सदस्य होते हैं जो जलने लगते हैं। उसी का नाम, जहाँ जाओ उसी की कीर्ति। हम यह सह नहीं पाते तो हम छाया देखने की कोशिश करते हैं। जैसे सिंहिका छाया देखती है और छाया पकड़कर खींचती है। ताकि ऊपर से जाने वाला नीचे गिर पड़े। इसी प्रकार जो ऊपर से जा रहा है जिसके नाम का प्रचार हो रहा है, जिसकी यशोपताका फहरा रही है। हम भी क्या करते हैं? बस, उसमें छाया देखने की चेष्टा करते हैं। कुछ न मिले तो एक दाग स्वयं लगा दें और उस कलंक के द्वारा उसको खींचने की चेष्टा करते हैं। यह असूया है। तो अर्जुन! ऐसा जो व्यक्ति असूया वृत्ति वाला है वह मेरे इस स्वरूप ज्ञान का अधिकारी नहीं है। ***(क्रमशः)***

जीवन की कमी भगवान से पूरी होगी

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

जिन्होंने मंत्र-दीक्षा नहीं लिया है, उनको कोई सहारा नहीं मिलता है, उनके मन को कोई स्थायी अवलम्बन नहीं मिलता है। केवल खाना-पीना-सोना, ऐसा जीवन नहीं बिताना चाहिए। हमें भगवान के बारे में और अपने बारे में कुछ सोचना चाहिए।

हमारा मन जैसा सोचता है, तो उसको पूरा करने के लिये हजारों साल लग जायेंगे, तब भी उसकी पूर्ति नहीं होगी। इसलिए भगवान का नाम लेकर उनको पुकारना चाहिए। हृदय से भगवान को पुकारने से तुरन्त मन में शान्ति मिलती है।

सुखमय जीवन जीने का सबसे बड़ा उपाय यह है कि हम दूसरों के साथ सद्भावना से रहें। सबसे मिलकर रहने से जीवन में लाभ होता है। दूसरों के लिये हम जब जीना शुरू करते हैं, तब हमारे जीवन में सुख आता है। चार लोगों के साथ मिलकर रहना, यह अपने आप में बड़ी तपस्या है। यदि हम संसार को सुखी करने के लिए प्रयत्न करेंगे, तो हम स्वयं सुखी रहेंगे। पूरा संसार मिलकर हमें सुखी नहीं कर सकता, क्योंकि संसार स्वार्थी है, इससे अपेक्षा न करें। भगवान का नाम लेने की आदत डालेंगे, तो सुखी रहेंगे। जो दूसरों को सुखी करने का प्रयत्न करते हैं, वे लोग सुखी रह सकते हैं।

असहिष्णु न बनें। कभी-कभी हमें थोड़ा कष्ट सह लेना चाहिए। लेकिन ये होता नहीं है। लड़ाई-झगड़े की जड़ स्वार्थपरता है। सभी समस्या का समाधान है भगवान का नाम और प्रार्थना। अपने कल्याण के लिए भगवान से प्रार्थना करनी चाहिए। हमारे लिये जो कल्याणप्रद है, वैसा ही भगवान करते हैं, हम जो चाहते वैसा नहीं करते। भगवान की जो इच्छा है, उसे हम माने, तभी हमारा कल्याण होगा। जब व्यावहारिक जीवन भी अच्छा जीएँगे, तब हमारा जीवन विशाल बनेगा।

अपनी मातृभाषा में भगवान से बातचीत करने की आदत डालनी चाहिए। हे प्रभु, ऐसी कृपा करो कि हमारे मन में माँगने की कोई इच्छा न रहे। जैसे छोटा बच्चा माँ के ऊपर निर्भर रहता है, वैसे ही हमें भी भगवान के ऊपर निर्भर रहना है। जैसे छोटा बच्चा अपनी तोतली अटपटी भाषा में ही माँ से अपनी बात कहता है, वैसे ही हमें भी अपनी मातृभाषा में ईश्वर से प्रार्थना करनी चाहिए। ईश्वर से कुछ भी नहीं छुपाना चाहिए। प्रार्थना में भगवान से भगवान को ही माँगो। कहीं भी आठों प्रहर शुची-अशुची में भगवान को ही पुकारना चाहिए। ये विश्वास रखें की भगवान हमारा सदा मंगल ही करेंगे, कुछ भी गलत नहीं करेंगे। यदि भगवान के प्रति ऐसी शरणागति का भाव आ जाये, तो बेड़ा पार है।

संसार की सबसे बड़ी समस्या है दूसरों से ईर्ष्या करना। ईर्ष्या साधक जीवन के लिए विष तुल्य है। यह वृत्ति दूसरों का दोष ही देखती रहती है। अत: कभी किसी से ईर्ष्या न करें। दूसरी बात है तत्काल हमारी इच्छा की पूर्ति नहीं होती। हमारा मन तुरन्त उद्वेग में आ जाता है। हम अपनी इच्छा की पूर्ति के लिये दूसरों को कष्ट देते हैं, जिसका फल हमें भुगतना ही पड़ता है। अत: जो बात मन में आती है, उसको तुरन्त नहीं करना है, उसके लिये थोड़ा समय देकर विचारपूर्वक करना है।

कर्म के नियम के अनुसार हमें यह मनुष्य जन्म मिला है। उसको भगवान के नाम और उनकी सेवा में ही लगाना चाहिए। संसार में हमें सब कुछ हमारे अनुकूल नहीं मिलेगा। हमारे जीवन का लक्ष्य क्या है, हम क्या चाहते हैं, यह हमें मालूम होना चाहिए।

भगवान की ओर हम अनुकूलता में देखें, यह ठीक नहीं, आवश्यकता में देखे, यहाँ तक कि प्रतिकूलता में भी भगवान पर विश्वास रखें। जीवन हमेशा हमारे अनुकूल नहीं होता, तो उसके लिए भगवान ने हमें जिस परिस्थिति में रखा है, उसमें समाधान रखना चाहिए और उनके शरणागत रहना चाहिए।

कठिन से कठिन परिस्थितियों में भगवान हमें सहने की शक्ति दें, इसके लिये प्रार्थना करें। भगवान से सम्बन्ध बनाने का प्रयत्न करें और हृदय से उन्हें प्रेम करें। हम दूसरों की कठिनाईयो को थोड़ा समझें। संसार हमारे अनुकूल कभी नहीं होगा, हमें इसे अपने अनुकूल बना लेना पड़ेगा। दूसरों को

शेष भाग पृष्ठ ९३ पर

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (३८)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

इसके बाद मेरी मैगडालेन की कथा। ''यह व्यक्ति यदि ईश्वरपुत्र हो, तो उसे यह ज्ञात होना चाहिये था कि यह नारी कौन और किस तरह की है?'' क्या यह यथार्थ नहीं है? क्या हमने हजारों बार इसी तरह की छिद्रान्वेषी समालोचना नहीं सुनी?

मन में उदय होनेवाले इस विचार का तत्काल उत्तर भी आ गया था – वह उत्तर एक साथ ही प्रत्यक्ष था, परन्तु साथ ही अति अप्रत्यक्ष, अति उत्कृष्ट और अति महान् था। एक ही व्याख्यान में मानो प्राच्य की पूरी अन्तरात्मा समायी हुई थी! मैंने भी ऐसे ही विचारों के प्रसंग में दिये गये ऐसे ही उत्तर सुने हैं।

मैदान में रहनेवाले चरवाहों के विषय में सदानन्द कहते हैं – देवदूतगण निश्चय ही उन लोगों के पास आये थे, क्योंकि वे सीधे-सादे लोग थे। सदानन्द का मत है कि चरवाहों का गवाँरूपन ही कथा को सत्यता प्रदान करती है, क्योंकि वे लोग इस पर कसीदाकारी करने में असमर्थ हैं! ''परन्तु मेरी ने यह सब कुछ अपने हृदय में धारण कर रखा था और उनका स्मरण-मनन किया करती थी।''

मेरी और मार्था की कहानी। इसका अन्तिम निष्कर्ष यह है – ''तुमने जो कुछ इन छोटे लोगों में से किसी एक के लिये किया, उसे तुमने किया'' – स्वयं भारत के लिये! तीन शिष्य, जिन्होंने स्वयं को समर्पित किया।

अत: ईसाई धर्म की पुराण-कथाएँ – प्राच्य देशों की प्रज्ञा, चरित्र तथा दैनन्दिन जीवन के द्वारा आलोकित होकर पुन: सुसम्बद्ध और पुन: प्रतिष्ठित हो एक बार फिर विश्वसनीय हो जाती हैं।

(इसी सन्दर्भ में उन्होंने मेरे गुरुदेव : जैसा उन्हें देखा' ग्रन्थ में भी लिखा है –)

ईसा का महान् जीवन पूरी तौर से चर्चित होने के बाद उनकी मृत्यु और अन्तत: पुनरुत्थान का प्रसंग भी आया। हम लोग ग्रन्थ के चौबीसवें अध्याय में पहुँचे और एक-एक कर घटनाएँ पढ़ने लगे।

परन्तु वह कथा हमारे कानों को इतनी नवीन प्रतीत होने लगी, जितनी पहले कभी नहीं हुई थी। वह एक ऐसा दस्तावेज था, जिसकी सत्यता या असत्यता निश्चित दिनांक तथा किसी साक्षी पर नहीं, अपितु स्पष्टता तथा अपने विभिन्न अंगों के बीच सामंजस्य पर निर्भर करती है। अब ऐसा लग रहा था, मानो (मन के लिये) दुर्बोध्य तथा (इन्द्रियों द्वारा) अग्राह्य विषयों को प्रत्यक्ष देखकर, किसी ने साँस रोककर हकलाते हुए उसे लिपिबद्ध करने की चेष्टा की हो। 'ईसा का पुनरुत्थान' अब हमें कोई ऐसी घटना नहीं लग रही थी, जिसे स्वीकृत या अस्वीकृत किया जा सके। यह घटना एक ऐसी आध्यात्मिक अनुभूति रूप में हुई थी, जिसे उसके अनुभवकर्ता ने लिपिबद्ध करने का प्रयास तो किया है, परन्तु हमेशा सफल नहीं हो सका है। पूरा अध्याय उन खण्ड-खण्ड तथ्यों का संकलन मात्र प्रतीत हुआ, जिसके द्वारा, न केवल पाठक को, अपितु कुछ हद तक स्वयं को भी विश्वास दिलाने का प्रयास किया गया हो।

क्योंकि, क्या हमें भी इसी से मिलते-जुलते एक पुनरुत्थान का कुछ-कुछ आभास नहीं मिला था? सहसा हमें अपने गुरुदेव (स्वामीजी) के ही एक स्पष्ट तथा सुविचारित वक्तव्य का स्मरण हो आया और उसका तात्पर्य भी समझ में आ गया – ''अपने जीवन में मैंने अनेकों बार लौटी हुई जीवात्माओं को देखा है; और एक बार श्रीरामकृष्ण परमहंस के देहत्याग के बाद वाले सप्ताह में वह आकृति ज्योतिर्मय थी।''

जिन ईसा ने स्वयं को अन्तर्धान कर लिया है, उन्हीं प्रभु (ईसा) को एक बार फिर देखने की उनके शिष्यों के हृदय में तीव्र आकांक्षा थी – हमने केवल उसी का प्रत्यक्ष अनुभव नहीं किया, अपितु अवतार के मन में भी होनेवाले उस गहनतर व्याकुलता का बोध हुआ, जिसके चलते वे लौटकर अपने बिछड़े हुए शिष्यों को सान्त्वना तथा आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

'जब तक वे रास्ते के किनारे खड़े होकर हम लोगों के साथ बातें कर रहे थे, तब तक क्या हमारे हृदय में

आग-सी नहीं भड़क उठी थी?'[१] अपने गुरुदेव (स्वामीजी) के देहत्याग के परवर्ती कुछ सप्ताहों के दौरान – क्या हमें भी, कितनी ही बार, इस प्रतीति के साथ आनन्द का बोध नहीं हुआ करता था, मानो वे हमारे बीच वास्तविक रूप में प्रकट हुए हों!

बाइबिल में जो लिखा है, ''रोटियाँ तोड़ते समय उन लोगों ने उन्हें देखा था;'' यह भी सत्य है। कभी थोड़ा-सा आभास, कभी कुछ शब्द, कभी कोई मधुर क्षण अथवा आन्तरिक स्पष्टता तथा बोध की एक झलक – प्रारम्भ के कुछ सप्ताह, विभिन्न अवसरों पर, इनमें से किसी एक के द्वारा भी हमारी स्पन्दनशील चेतना जाग उठती थी; हमारी उत्कट व्याकुलता के भीतर शंका तथा आश्वासन, दोनों ही मिश्रित हुआ करते थे।

उस रात, पुनरुत्थान की 'उन विशेषताओं को' हम लोग खण्डगिरि में ही छोड़ आये; ऐसा लगता है कि जिन्हें बाद में ऐसे लोगों द्वारा कथा में जोड़ दिया गया था, जो उसमें अक्षरश: विश्वास करते थे। आज हम जिस कथा को पढ़ रहे थे, हमारा मन उसके प्राचीनतर रूपों पर एकाग्र हो गया था, जो बारम्बार सहसा प्रभु के प्राकट्य तथा अन्तर्धान होने के हर्ष-विषाद से परिपूर्ण, एक करुण चित्र का सीधा-सादा विवरण था, जिसमें उनके ग्यारह शिष्य एकत्र होकर आपस में फुसफुसाते हुए कह रहे हैं, ''देखो, देखो, सचमुच ही प्रभु का पुनरुत्थान हुआ है!'' और अन्तिम कथा में, सबने ईसा का आशीर्वाद पाते हुए एक-दूसरे से विदा ली थी।

ईसा के पुनरुत्थान की प्राचीन कथा पढ़ते हुए हमें लगा कि यहाँ किसी शारीरिक पुनरुत्थान की बात नहीं कही गयी है; बल्कि वह केवल आकस्मिक तथा अप्रत्याशित रूप से प्रभु तथा शिष्यों की इच्छाशक्ति का सम्मिलन, ज्ञान तथा प्रेम का पुनरागमन और प्रार्थना-काल में क्षणिक तन्मयता-प्राप्ति का विवरण था। वैदिक भाषा में कहें, तो प्रभु उस समय अपने 'ज्योतिर्मय स्वरूप को प्राप्त होकर', एक ऐसे सूक्ष्मतर तथा उच्चतर चेतना के स्तर में विद्यमान हैं, जिसकी हम इन्द्रियों में आबद्ध जीव कल्पना तक नहीं कर सकते।

फिर, ये घटनाएँ इतनी स्थूल भी नहीं थीं कि उस अर्धश्रुत, अर्धदृष्ट क्षणिक संकेत के विषय में सभी लोग समान रूप से सचेत हो पाते। स्थूल दृष्टि में वे बिल्कुल भी नहीं आते। यहाँ तक कि जिन्हें सूक्ष्मतम दृष्टि प्राप्त है, उन्हें भी इन विषयों में शंका करने; आग्रहपूर्वक चर्चा करने, उन्हें क्रमबद्ध रूप से सजाने और अन्तत: यत्नपूर्वक हृदय में धारण करने की जरूरत थी। ईसा के शिष्यों में, जो उनके अत्यन्त अन्तरंग तथा सर्वाधिक प्रामाणिक थे, उनमें से भी शायद किसी-किसी को इस विषय में पूरी शंका थी।

तथापि उस रात को खण्डगिरि की गुफाओं तथा वनों के बीच ईसाइयों की इस पुनरुत्थान की कथा पढ़ते हुए हम यह विश्वास किये बिना नहीं रह सके कि इसके बीच से होकर इसके पीछे स्थित सत्य का एक सूत्र चमक रहा है; और हम लोग कभी कहीं किसी मानवात्मा द्वारा छोड़े गये वास्तविक पदचिह्नों को ढूँढ़ने का प्रयास कर रहे हैं, जो अपनी क्षणिक अनुभूति का एक स्मृतिचिह्न छोड़ गये हैं। ऐसा विश्वास तथा बोध हमें इसलिये हुआ, क्योंकि अति अल्पस्थायी होने के बावजूद एक ऐसे ही समय में एक ऐसी ही अनुभूति हम लोगों के समक्ष भी प्रकट हुई थी।

१९ नवम्बर, १९०२ : मिस मैक्लाउड को

तुम रिजली (अमेरिका) में हो। सब कुछ मुझे कितनी भलीभाँति याद है। ... अहा, वह कमरा, महान् आशीर्वाद वाला कमरा! ...

तुम लोगों के हॉल में अलाव के पास बैठी हूँ। यह चित्र असंख्य बार देखती हूँ – मैं बैठी हूँ और वे बोले जा रहे हैं और अपराह्न क्रमश: ढलते हुए, संध्या की ओर चला जा रहा है।

उस महान् जीवन और उसकी पूर्ण विजय के अतिरिक्त – बाकी सब कुछ व्यर्थ प्रतीत हो रहा है। ***(क्रमश:)***

पृष्ठ ९१ का शेष भाग

कष्ट देनेवाला भगवान का उपासक नहीं हो सकता। स्वार्थ से कभी सुख नहीं मिलता, त्याग से सुख मिलता है। भगवान को पुकारने के लिये शान्त मन चाहिए, जो भगवान की कृपा से ही मिलता है। अनुकूलता और प्रतिकूलता अपने मन की ही बात है। जीवन की कमी भगवान के बिना पूरी नहीं होगी। भगवान से प्रार्थना और उनके नाम-जप से वह कमी भी पूरी हो जायेगी।

यदि भगवान के भक्त होना चाहते हो, तो किसी को कष्ट मत दो, दुख मत दो, इसमें ही आध्यात्मिकता है। सुख तो दूसरों को सुखी करने में ही होगा। यही हमारे जीवन का एक बड़ा सत्य है। ○○○

१. बाइबिल, लूका रचित सुसमाचार, २४/३२

श्रीमद् अध्यात्मरामायणम्

अन्वय+बंगलानुवाद – स्वामी पूर्णानन्द
प्रकाशक – संस्कृत पुस्तक भंडार,
३८, विधान सरणी, कलकत्ता - ७०००0६,
पृष्ठ - १२८६, मूल्य - ८२५/-

अध्यात्मरामायण, दो शब्दों से मिलकर बना है – अध्यात्म और रामायण। इसका तात्पर्य है आत्मा के अनुसंधान का विज्ञान। अपनी मनोभूमि में बैठे जन्म-जन्मान्तरों के कुसंस्कारों को मूल से उखाड़ने की प्रक्रिया ही आध्यात्मिकता है। अपने मन में ईश्वरीय सद्गुणों का बीजारोपण कर उसे श्रद्धा, विश्वास, तत्परता, एकाग्रता, सच्चाई तथा वीरता से सींचना, क्योंकि आत्मा का परिष्कृत रूप ही परमात्मा है, यही आध्यात्मिकता का सच्चा स्वरूप है। रामायण का अर्थ है - रा अर्थात् प्रकाश, मा - आत्मा, अयन अर्थात् यात्रा पथ। आत्म-प्रकाश का यात्रा पथ ही रामायण है। यह मात्र एक कथा नहीं है, अपितु मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के पावन चरित्र का आध्यात्मिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक दस्तावेज है। इसमें जीवन के समस्त रहस्यों की कुंजियाँ योजनाबद्ध रूप से संगृहीत हैं। यह विशिष्ट कोष आदर्श जीवन, व्यवहार व कर्म की सहज मानवीय पाठशाला है। महत्तर सांसारिक और आध्यात्मिक कल्याण की उपलब्धि की कला और कौशल सीखने का विज्ञान है, प्रबन्ध है।

'अध्यात्म रामायण' की इसी महत्ता को ध्यान में रखकर स्वामी पूर्णानन्द जी महाराज ने जन-साधारण के बोधगम्य हेतु 'श्रीमद् अध्यात्मरामायणम्' का बांग्ला भाषा में अनुवाद किया है। १२८६ पृष्ठ की इस पुस्तक का प्रकाशन कलकत्ता के संस्कृत पुस्तक भंडार ने किया है। इस पुस्तक में शब्दार्थ व टीका के अतिरिक्त, प्रत्येक शब्द का अन्वय होने के कारण यह सरल, सहज और पठनीय है, जो लेखक के पाण्डित्य व शास्त्रज्ञता का प्रमाण है। अध्यात्म रामायण का यह पहल ऐसा ग्रन्थ है, जिसमें अन्वय के साथ अनुवाद किया गया हो।

अध्यात्म रामायण में कुल ६५ अध्याय और ४००० श्लोक हैं। यह भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। रामायण की रचना सर्वप्रथम संस्कृत भाषा में महर्षि वाल्मीकि ने की थी। कालान्तर में व्यासदेव कृत अध्यात्म रामायण, योग वाशिष्ठ रामायण, तुलसी रामायण, अद्भुत रामायण, आनन्द रामायण आदि की श्रृंखला उपलब्ध है। सभी में मानव जीवन की उस वास्तविकता का गहराई से निरुपण किया गया है, जो कल्याणकारी है। इसी परिप्रेक्ष्य में पूज्य स्वामी पूर्णानन्द जी महाराज द्वारा अनूदित 'श्रीमद् अध्यात्म रामायणम्' ग्रन्थ अद्भुत, अद्वितीय, मानवीय जिज्ञासा को शान्त करनेवाला श्रेष्ठ महाकाव्य है। यह भक्ति, ज्ञान, वैराग्य की वैतरणी है, जिससे समस्त मनुष्य भव-बन्धन से पार उतर सकते हैं। इस ग्रन्थ का उद्देश्य प्रत्येक व्यक्ति को विपरीत परिस्थितियों में भी शान्त रहकर समतापूर्वक जीवन व्यतीत करनेवाले चेतन और समर्थ मानव के रूप में विकसित और प्रतिष्ठित करना है।

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम को मर्यादा पुरुषोत्तम आदर्श व्यक्तित्व के रूप में निरुपित किया गया है, किन्तु अध्यात्म रामायण में वे एक 'अवतार' हैं, जो जगत् हित हेतु 'राम' के रूप में अवतरित हुए हैं।

सच पूछिए तो हमारी 'आत्मा' ही 'राम' है, हमारा मन 'सीता' है, हमारी जीवनशक्ति, साँस अथवा प्राण 'हनुमान' है, हमारी जागरूकता 'लक्ष्मण' है तथा अहंकार 'रावण' है। जब अहंकार रूपी रावण मन रूपी सीता का हरण कर लेता है, तब जागरूकता रूपी लक्ष्मण और हनुमान रूपी जीवनीशक्ति की सहायता से आत्मा रूपी राम को सीता की प्राप्ति होती है। इस दृष्टि से रामायण हर मनुष्य में होनेवाली शाश्वत घटना है।

जैसे गीता में भगवान कहते हैं –

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

वैसे ही अध्यात्म रामायण में भी कहा गया है –

सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम।।

अर्थात् 'मैं आपके शरणागत हूँ' कहकर कोई भी मेरी शरण में आता है, उसे सर्वभूतों से अभय दान देना मेरा व्रत है।

'वचनामृत' में भगवान श्रीरामकृष्णदेव कई बार अध्यात्म रामायण का उदाहरण देते हैं। यथा – 'अध्यात्म में केवल ज्ञान व भक्ति है। यह ग्रन्थ भक्तिमार्गियों के लिए आध्यात्मिक प्रगति का प्रवेश द्वार है। भगवान राम तो धर्म की परम अभिव्यक्ति का मानवीय प्रकटीकरण हैं। उनका जीवन सबके लिए परम कल्याणकारी है।'

समीक्षक – स्वामी कृष्णामृतानन्द,
प्राचार्य, रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर

रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में गुरुग्राम में नए केन्द्र का शिलान्यास

रामकृष्ण मिशन, नई दिल्ली के तत्त्वावधान में रामकृष्ण मिशन, गुरुग्राम में प्रस्तावित विशाल भवन का शिलान्यास रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-संघाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने किया। हरियाणा सरकार ने कन्सेशनल रेट पर हुडा के सेक्टर ४७, गुरुग्राम में १५०० स्क्वायर एम. भूमि प्रदान किया। प्रस्तावित भवन में विभिन्न प्रकार के सेवा-कार्य आदर्शोन्मुखी शिक्षा आदि संचालित होंगे। रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-महासचिव स्वामी बोधसारानन्द जी महाराज ने धन्यवाद ज्ञापन किया। इस समारोह में लगभग २० साधुओं और ३५० भक्त उपस्थित थे। तदनन्तर ६५० दरिद्र-नारायणों को भोजन कराया गया।

१२ नवम्बर, २०१९ को स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने रामकृष्ण मठ, चेन्नई और रामकृष्ण मिशन, दिल्ली के संयुक्त तत्त्वावधान में निर्मित वी.आर, और ए.आर. नामक दो प्रदर्शनी का उद्घाटन किया।

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन में राष्ट्रपतिजी, राज्यपाल और मुख्यमन्त्रीजी का समेवत आगमन

रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वृन्दावन में नवनिर्मित सारदा ब्लाक का उद्घाटन २८ नवम्बर, २०१९ को भारत के राष्ट्रपति श्री

रामनाथ कोविन्द जी ने किया। इस अवसर पर उत्तर प्रदेश की राज्यपाल श्रीमती आनन्दीबेन पटेल, उत्तरप्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री योगी आदित्यनाथ और कई अन्य मन्त्रियों और गणमान्य लोग भी उपस्थित रहे।

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर में आध्यात्मिक शिविर का आयोजन

२४ नवम्बर, २०१९ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सत्संग भवन में आध्यात्मिक शिविर का

आयोजन किया गया। इसमें रामकृष्ण मिशन आश्रम, नारायणपुर के सचिव स्वामी व्याप्तानन्द, रामकृष्ण मिशन आश्रम, इन्दौर के सचिव स्वामी निर्विकारानन्द, रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल के सचिव स्वामी नित्यज्ञानानन्द, विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर के सचिव डॉ. ओमप्रकाश वर्मा ने भक्तों को सम्बोधित किया। सभा की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज ने की।

शीतकालीन राहत-कार्य दूसरा चरण

२१ नवम्बर, २०१९ को रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर द्वारा शीतकालीन दूसरा राहत कार्य रायपुर जिले के नवागाँव में किया गया, जिसमें वहाँ २७ परिवारों को स्वामी अव्ययात्मानन्द जी के कर-कमलों से उत्कृष्ट कोटि के कम्बल वितरित किए गए। सर्वेक्षण और वितरण कार्य में रविशंकर विश्वविद्यालय के प्रो.बी.एल.सोनेकर, कपिल कुमार चन्द्रा, रविकान्त चन्द्रा, इन्दल कुमार ने सहयोग किया।